सम्पादकीय—

पुस्तक का विषय उपन्यास नहीं है; अपितु धार्मिक महागहन है और वर्तमान में प्राचीन आम्नाय का अभाव और साहित्य सामग्री की विरलता है तब इस प्रथम संस्करण में अनेक त्रुटिया रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। मैंने यथामति जो कुछ प्राचीन सामग्री मिल सकी उसी पर से संकलन किया है। कल्पित कुछ नहीं है।
--शास्त्रीय क्रियाओं का प्रचार हो इस लिये लगभग १५० पृष्ठ होते हुए भी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है।

आप पुस्तक का प्रचार कैसे करें ?

प्रिय पाठकों ! आप २-४ जने गोष्ठी बनाकर इसकी स्वाध्याय चालू कीजिये, कम से कम सारी पुस्तक को १-२ बार पढ जाइये। पुस्तक मे जहा जैसी क्रिया करने बाबत उल्लेख है वहा रंगीन पेंसिल से कुछ हैसिया पर निसान बना दीजिये और क्रिया को स्वयं प्रयोग कीजिये तथा नोटकर लीजिये, फिर पुस्तक के सहारे सामायिक आदि चालू कर दीजिये।

मैं उदार चेता धर्मनिष्ठ भाई श्री मिश्रीलालजी कटारिया का विशेष आभारी हूँ जिनकी सातिशय प्रेरणा पाकर यह संकलन कर सका हूँ तथा स्थानीय श्री समन्तभद्र दि० जैन विद्यालय के अधिकारियों का भी कृतज्ञ हू कि उन्होंने छात्रो के पठनार्थ इस पुस्तक को कोर्स में स्थान दिया है दूसरी शिक्षा संस्थाओं से भी इसके अपनाये जाने की आशा करता हू।

इस पुस्तक में अनुवाद मे कहीं २ भाषा काठिन्य, रेखा चित्रो का अभाव आदि खामियां मेरे सामने है। प्रत्येक पाठक से अनुरोध है कि अपनी २ सम्मति, सुझाव और शंकाए मेरे पास भेजने की कृपा करें। जिससे अगले संस्करण में सुधार हो सके। प्राप्त सम्मति भी प्रकाशित की जावेगी।

विनीत—दीपचन्द पांड्या

॥ श्री ॥

सामायिक पाठादि संग्रह

विधि सहित

प्राक्कथन विषय सूची आवश्यक परिचय संशोधनपत्र
हिंदी अनुवाद प्रयोगानुपूर्वी आदि से अलंकृत।
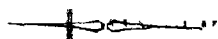
संकलन कर्ता और अनुवादक
पं० दीपचंद्र पांड्या जैन साहित्य-शास्त्री
पो० केकड़ी (अजमेर)

प्रकाशक

कुंवर मिश्रीलाल कटारिया जैन

श्री दि० जैन युवक संघ, केकड़ी (अजमेर)

प्रथमावृत्ति	श्रावणी पूर्णिमा	मूल्य लागत मात्र
१०००	वीर नि० गताब्द २४८०	१) रुपैया

मुद्रक-श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिं० प्रेस, ब्यावर में छपा।

प्रकाशकीय वक्तव्य—

स्वर्गीय विद्यागुरु श्री प० मूलचन्दजी जैन सिद्धान्त शास्त्री केकड़ी निवासी की प्रबल उत्कंठा थी कि समाज में जैन संस्कृति की प्रतीक सामायिक आदि आवश्यक क्रियाएँ जो जीवन में उच्च आदर्श धार्मिक संस्कारों का आधान करती हैं और जो काल दोष से समाज से लुप्त हो चुकी हैं पुनः अधिकाधिक रूप में प्रचार में आएँ। उन्होंने इसके लिए आज से २० वर्ष पूर्व तब स्थानीय समाज के नवयुवकों में सामायिक आदि का प्रचार किया था, सो तो अब तक भी यहां बराबर चालू है। परन्तु सर्व साधारण में उन क्रियाओं का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाया इसमें एतद्विषयक सर्वांगीण सरल पुस्तक का अभाव होना एक मात्र कारण बना हुआ था। अब हम प० दीपचन्दजी पाड्या शास्त्री के द्वारा तैयार कराकर यह सर्वांगीण सरल पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं इस सब का श्रेय प्रधानत गुरुवर्य को और पांड्याजी को है अत हम उन दोनों के महान आभारी हैं।

आज हमें यह 'सामायिक पाठादि संग्रह' पुस्तक पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है और साथ ही पूज्य मुनिवर्ग श्रावकवर्ग तथा जैनसंस्थाधिकारी सभी से हम यह आशा करते हैं कि वे सामायिक आदि की उपादेयता पर ध्यान देकर इन्हें समाज में अधिकाधिक प्रचार में लाने का प्रयत्न करेंगे।

इस संस्करण में जो कुछ त्रुटियां रह गई हों उनके लिए स्वाध्यायी पाठक हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि उन्हें अगले संस्करण में परिमार्जित कर दिया जाय।

श्रावणी पूर्णिमा | निवेदक—
वीर सं० २४८० | —कुंवर मिश्रीलाल कटारिया, केकड़ी

सहायक सज्जनों की शुभ नामावलिः—

जिनकी आर्थिक सहायता से यह प्रकाशन सम्पन्न हुआ।

१. कुं० श्री मिश्रीलालजी शांतिलालजी कटारिया

२. कु० कान्तिचन्दजी रूपचन्दजी कटारिया

३. श्री गुलाबचन्दजी कुन्दीलालजी कटारिया

४. ,, मिलापचन्दजी रतनलालजी कटारिया

५. ,, सुवालालजी प्रकाशचन्दजी कटारिया

६. ,, दीपचन्दजी मिश्रीलालजी पाड्या

७. ,, रतनलालजी भागचन्दजी ग वाल

८. ,, सुगनचन्दजी विरधीचन्दजी छाबड़ा

९. ,, माणिकचन्दजी रतनलालजी गदिया

१०. ,, हेमराजजी प्रेमचन्दजी शाह

११. कु० श्री पन्नालालजी शांतिलालजी बड़जात्या

१२. श्री अमोलकचन्दजी शान्तिलालजी गदिया

१३. ,, छीतरमलजी भवरलालजी जैन अग्रवाल

१४. ,, मोहनलालजी तोतालालजी जैन अग्रवाल

१५. ,, लाधूलालजी कनकमलजी भाल

१६. ,, कल्याणमलजी भवरलालजी छाबड़ा

१७. ,, शकरलालजी नोरतनमलजी बज

१८. ,, चान्दमलजी बज

१९. ,, चान्दमलजी गदिया

आदि आदि

प्राक्कथन

मुमुक्षु भव्य पुरुष का खास लक्ष्य महाव्रत धारण करने का रहता है। किन्तु; जब वह अपने को महाव्रतों के पालन मे असमर्थ पाता है तब विवश हो एकदेश श्रावक के व्रतों को धारण कर लेता है। अभिलाषा उसकी वही मुनि बनने की रहती है और जिसके लिए वह गृही अवस्था में भी अभ्यास करता रहता है। गृहस्थ के द्वारा प्रतिदिन सामायिक किया जाना यह उसी लक्ष्य तक पहुँचने का अभ्यास ही है।

सामायिक की महिमा

सामायिक करना केवल मुनियों के लिये ही आवश्यक नहीं बतलाया है श्रावक के लिय भी उसके करने का विधान है। मूलाचार ग्रंथ मे कहा है कि —

सावज्जजोगप्परिवज्जणट्ठं
सामाइयं केवलिहिं पसत्थं।
गिहत्थ-धम्मोऽपरमो त्ति णच्चा
कुज्जा बुहो अप्पहियं पसत्थं।

गृहस्थ का धर्म अपरम है-हीन है क्योंकि गृहस्थ जीवन में आरम्भ-परिग्रह जनित हिंसा आदि सावद्य दोष हमेशा लगते रहते है इसलिये सावद्य योगों से छुटकारा पाने के हेतु केवल-ज्ञानियों ने 'सामायिक' को ही प्रशस्त उपाय बतलाया है ऐसा जानकर ज्ञानी गृहस्थ को सामायिक रूप प्रशस्त आत्म-कल्याण हमेशा करना चाहिए।

स्वामी समन्तभद्र ने भी *'व्रत पञ्चक परिपूरण कारण भवधानयुक्तेन'* पद से गृहस्थो के लिये सामायिक को पंचव्रतों की पूर्णताका कारण बतलाते हुए कहा है कि *'चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ।'*—सामायिक करते समय गृहस्थ ऐसे यतिभाव को प्राप्त हो जाता है जैसे मुनि पर वस्त्र डाल कर उपसर्ग कर दिया हो ॥

मूलाचार में भी इसी आशय को व्यक्त किया है यथा:—

सामाइयम्मि दु कदे समणो इव सावओ हवदि जम्हा ।
एदेण कारणेण दु बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥१॥

—षडावश्यकाधिकार

सामायिक मे एकाग्र होने वाला श्रावक भी संयमी मुनि तुल्य हो जाता है, इस कारण श्रावक को सामायिक में अवश्य प्रवर्त्तना चाहिये ।

इसी गाथा की वसुनन्दि सैद्धान्तिक कृत संस्कृत टीका में लिखा है कि- किसी एक श्रावक ने चतुर्दशी के दिन श्मसान में आकर सामायिक धारण किया । उस समय उस पर देवकृत घोर उपसर्ग हुए तो भी वह मामायिक से च्युत नहीं हुवा और उपचार स श्रमण कहलाया ।

कथा ग्रन्थो मे श्रावको के सामायिक करने की और भी कई कथायें आती है । एक कथा का उल्लेख स्वय मूलाचार के कर्त्ता ने ही इस प्रकार किया हैं:—

सामाइए कदे सावएण विद्धो मओ अरण्णम्मि
सो य मओ उद्धादो ण य सो सामाइयं फिडिओ ।

—षडावश्यकाधिकार

अर्थात् कोई श्रावक वन मे सामायिक कर रहा था। उस वक्त किसी शिकारी ने मृग पर बाण मारा। वह मृग श्रावक के चरणों के समीप आकर तड़फड़ाता हुआ मर गया। तो भी श्रावक ने सामायिक को नहीं छोड़ा—संसार के स्वरूप का विचार करता हुआ सामायिक मे ही तत्पर रहा।

दि० जैनों में सामायिक परंपरा का लोप

जिस सामायिक को शास्त्रकारों ने इतनी प्रशंसा की है और जिसका किया जाना गृहस्थो के लिए बड़ा हितकारी और उपयोगी बताया गया है। खेद है, कि काल दोष से और दि० जैन श्रमण परंपरा के विशृंखलित हो जाने से उस सामायिक की परिपाटी इस समय दि० जैन समाज के गृहस्थों मे उठ सी गई है। जब कि श्वेताम्बर समाज मे सामायिक का प्रचार अद्यावधि भी काफी मात्रा में पाया जाता है। सामायिक का पुन. प्रचार न हो सकने के कारणों मे यह भी एक कारण हो सकता है कि इस विषय की कोई ऐसी अच्छी पुस्तक प्रकाश में नहीं आपाई है कि जिसमे सामायिक के पाठो का और उस की क्रिया विधि का विवेचन व्यवस्थित शृंखलाबद्ध किया गया हो।

प्रस्तुत संस्करण और उसकी विशेषता

पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि श्रीमान प० दीपचन्दजी पाड्या शास्त्री केकड़ी निवासी का ध्यान इस ओर गया उन्होंने चिरकाल तक इस विषय के शास्त्रों का मनन और आलोडन करके सामायिक पाठ सम्बन्धी यह प्रस्तुत संस्करण तैयार किया जो आपके समक्ष मौजूद है।

इस पुस्तक में दि० जैन मूलसंघकी प्राचीन परम्परा के अनुसार सामायिक-प्रतिक्रमण के संस्कृत-प्राकृत पाठो का शुद्ध रूप देने में भरसक प्रयत्न किया गया है और प्रत्येक पाठ का हिंदी अर्थ भी दे दिया है जिससे सामायिक करने वाले को यह पता लग सके कि जिस पाठको मै बोल रहा हूं उसका यह अर्थ होता है। इस पुस्तक मे प्रत्येक क्रिया विधि को ऐसा खोल खोल कर समझाया गया है कि जिससे पाठ करने वाले को किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पडे। और भी कई विशेषताएं इस पुस्तक मे दृष्टिगोचर होती हैं जिनमे से कुछ का उल्लेख करना यहा उचित होगा:—

१-छह आवश्यकों की विधि और उनके स्वरूप को बोल चाल की भाषा मे दे कर प्रतिपाद्य विषय को सुबोध बना दिया है।

२-सामायिक आदि छहों आवश्यकों का प्रत्येक का स्वतन्त्र विधान स्पष्ट करके बतलाया गया है।

३-आगार सूत्र का पाठ जो वीरभक्ति की आलोचना (आंचली) मे ही घुल मिल रहा था और जिसे अलग से नहीं बोला जाता था अलग प्रतिपादित कर दिया गया है इसे कायोत्सर्ग करने के पूर्व बोलना चाहिए।

४-चत्तारि मंगलं—आदि दंडक पाठ जो नित्य नियम पूजा पाठ आदि कई छोटी मोटी पुस्तकों मे प्रायः अशुद्ध लिखा मिलता [illegible] करके लिखा गया है।

[illegible]-चैत्य भक्ति समूह के अन्तर्गत पाठो का नवीन नाम-करण किया गया है।

६–श्रावक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत सामान्य दोषों की आलोचना का विधान मूलाचार ग्रन्थ के अनुसार किया गया है। (देखो पृष्ठ ६४)

'श्रावक-प्रतिक्रमण क्रियाकलाप' आदि मुद्रित और लिखित दूसरे ग्रन्थों में जो प्रतिक्रमण सम्बन्धी चार कृतिकर्मो की कृत्य विज्ञापना का नाम करण अधूरा पाया जाता है तथा उनमे प्रतिक्रमणभक्ति और वीरभक्ति की आलोचना (आंचली) का पाठ भी अस्त व्यस्त पाया जाता है यह सब यहा शुद्ध पूर्ण कर दिया गया है।

८–निसीहिया भक्ति का पाठ भी प्राचीनतम प्रतियों के आधार से संशोधित करके रक्खा गया है।

६–प्रतिक्रमण के अतिचार—पाठो की सरणि तत्त्वार्थसूत्र मे प्रतिपादित क्रम से ही दी गई है।

१०–प्रतिक्रमण के चौथे कृतकर्म मे शांतिभक्ति का पाठ होना जरूरी है, पर दूसरे ग्रथों में समाविष्ट नहीं हुआ है सो यहां यथास्थान समाविष्ट कर दिया गया है।

- अलावह इसके प्राचीन से चले आरहे पाठों में कहीं कुछ व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से शाब्दिक परिवर्तन भी किये गये हैं।

उपसंहार

किसी भी ग्रन्थ को पढ़ते हुए उसमे लिखी अशुद्धियो को पांड्याजी झट से ताड जाते हैं और कह उठते हैं कि 'यहा इस वाक्य या अक्षर के स्थान में अमुक वाक्य या अक्षर होना

चाहिए' आदि कुछ ऐसी आपकी विलक्षण प्रतिभा है। इस प्रतिभा का उपयोग आप इस संकलन में भी कहीं कहीं किये बिना नहीं रह सके हैं।

पुस्तक को मैंने सरसरी तौर पर देखा है, इसलिये इस पर मैं और अधिक कुछ नहीं लिखना चाहता। विशेषज्ञ विद्वान् ही विषय के अन्तस्तल तक पहुँच कर कथन के औचित्य किंवा अनौचित्य पर प्रकाश डाल सकते हैं। मैं तो इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूँ कि प० दीपचन्दजी साहब ने इस पुस्तक के संकलन तथा सम्पादन मे काफी श्रम किया है और पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने मे कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। उसके लिए आप बहुत २ धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि इस पुस्तक का घर घर में प्रचार होकर लुप्त हुई सामायिक की परिपाटी का पुनः उद्धार होवे।

इति शम्

सौभाग्य दशमी — मिलापचन्द कटारिया

२४८० वीर निर्वाण गताब्द — केकड़ी (अजमेर)

अथ आवश्यक कर्म परिचय

अनासक्तधियः शश्वद्विधिमावश्यकं स्वयम्
जिनेन्द्रोक्तं परं तत्त्वं प्रपश्यन्त्यतिश्रद्धया ।

भोगों से अनासक्त बुद्धि वाले सरल परिणामी पुरुष जिनेन्द्र भाषित उत्कृष्ट तत्त्व आवश्यक कर्म को स्वयं निरन्तर अतीव श्रद्धा से देखते हैं-छह आवश्यकों का पालन करते हैं। कहा भी है कि—

आदहिदं कादव्वं जं सक्कइ परहिदं पि कादव्वं ।
आदहिद-परहिदादो आदहिदं सुट्ठु होदि कादव्वं।

आत्मकल्याण कीजिये. बन सके तो पर कल्याण भी कीजिये। आत्महित परहित दोनों का युगपत्समवाय होते-दोनों में प्रथम कर्तव्य क्या है? ऐसा बुद्धिद्वैध होते आत्मकल्याण को ही भले प्रकार करना चाहिए। वे आत्म-हितके कार्य आवश्यक कर्म हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है·—

आवश्यक किसे कहते हैं?

जो आत्मार्थी भव्य पुरुषों के अवश्य करने योग्य क्रिया हो उसे आवश्यक कहते है, अथवा जिस क्रिया के करने से आत्मा पाप कर्मों से छूटे उसे आवश्यक कहते हैं।

आवश्यक के ६ भेद हैं-सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग।

सामायिक किसे कहते हैं ?

नियत देश तथा नियत समय के लिये सारे सावद्य योगों को (हिंसा आदि पाचों पापों को) मन वचन काय से त्याग करना सो श्रावकों के सामायिक है। सामायिक करते समय साधक को चार शुद्धियों पर ध्यान देना चाहिए। द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि ये ४ शुद्धियां है।

चार शुद्धियों का खुलासाः—

द्रव्य शुद्धि से मयूरपिच्छी या कोमल उपकरण, चटाई और बिना सिले हुए वस्त्र तथा स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थ व जप-माला आदि इष्ट हैं। क्षेत्र शुद्धि से तेज हवा वर्षा, पशु-पक्षियों और डाँस आदि जीवो से रहित निर्बाध निराकुल स्थान चैत्या-लय सूने घर, गुफा वन आदि एकान्त पवित्र प्रदेश लेने चाहिये। काल शुद्धि से मुख्यत: तीनों सन्ध्याकाल-प्रातः साय और मध्याह्न का ग्रहण उपयुक्त हैं वैसे शुभ कार्यो मे समय की कोई पाबंदी नहीं है। भावशुद्धि से-विकथा, क्रोध आदि कषाय भाव, प्रमाद आलस्य और निद्रा आदिका त्यागना इष्ट है।

विशेष—साधक को सांसारिक कार्यो मे व्यासग (मन का लगाव) अति मात्र भोजन राजसी और तामसी व गुरु भोजन अति चिंता का परित्याग करना चाहिए।

स्तव किसे कहते हैं ?

चौबीस तीर्थङ्करो का थोस्सामि दंडक या 'लोगस्स' पाठ

आदि स्तोत्रों के द्वारा भाव पूर्वक गुण स्मरण करना उसे 'स्तव' या 'चतुर्विंशति स्तव' कहते हैं।

स्तव करते समय भव्य को शरीर और स्थान की कोमल उपकरण से प्रतिलेखना करके दोनो चरणों के चार अंगुल प्रमाण अंतराल (फासला) रखते हुए और अंजलि मुद्रा लिये सीधे खड़े होना चाहिए।

वंदना किसे कहते हैं ?

पांचो परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवचन, चैत्य और चैत्यालय इन नव पद का प्रत्येक का गुणस्मरण करना उसे वंदना कहते हैं।

वंदना में योग्य विधि विधान—

योग्य-काला-ऽऽसन-स्थान-मुद्राऽऽवर्त-शिरो-नति
विनयेन यथाजातः कृतिकर्माऽमलं भजेत्

—अनगारधर्मामृत

१—काल-तीनो संध्या-काल को कहते हैं।

२—आसन दोनों पैरों के जमाव या बंधन विशेष को कहते हैं। आसन दो प्रकार का है—उद्भासन और उपविष्टासन दोनों पैरों के चार अगुल प्रमाण अंतराल रखते हुए खड़े होना सो उद्भासन होता है। पद्मासन सुखासन और वीरासन के भेद से उपविष्टासन के तीन भेद हैं। आसन में दोनों तलुवे घुटनो के नीचे दबे हों तो पद्मासन होता है। दोनों तलुवे घुटनों के

ऊपर रखे जाने पर वीरासन होता है और बांये घुटने पर दाहिने पैर का तलुवा रख कर बैठने से सुखासन होता है।

३-स्थान ऊपर क्षेत्र शुद्धि मे कह आये है वहां से जान लेवें।

४-मुद्रा—दोनों हाथों के जमाव या बन्धन विशेष को कहते हैं। मुद्रा यहा चार मानी हैं। १ जिनमुद्रा योग मुद्रा वन्दना मुद्रा या अंजलि मुद्रा और शुक्तिमुद्रा या मुक्ताशुक्तिमुद्रा।

दोनों हाथों को घुटने पर्यन्त सीधे लटका देना सो जिन-मुद्रा है। दोनों हथेलियो को चित्त करके जमा देना सो योग मुद्रा है। कटोरी या खिला हुआ कमल या पत्र पुट (दौना) की भांति अंगुलियों को सटाकर हाथों को बांधना सो अंजलि मुद्रा है।

और अपने दोनों हाथ जोड लीजिये फिर दोनों अंगूठे बीच मे डालिये और इस तरह पोल दीजिये कि हाथो का आकार जुड़ी सीप जैसा या फूल की कली-सा बन जाय यह शुक्ति मुद्रा होती है। योग मुद्रा मे उपविष्टासन और शेष तीनों मुद्राओ में खड्गासन ही होता है।

५-दोनों हाथो को जोड कर प्रदक्षिणा रूप घुमाना सो आवर्त है।

६-दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करना सो प्रणाम या शिर है।

७-भूमि को स्पर्श करते हुए हाथ जोड़ कर ढोक देना सो नति है।

कृतिकर्म किसे कहते हैं ?

'सामायिकस्तव—पूर्वक. कायोत्सर्ग. चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्तः 'कृतिकर्म' इत्युच्यते।—मूलाचार-टीका

१ नमस्कार मन्त्र, २ चत्तारिमंगलं-दंडक पाठ, ३ अढ्ढाइज्ज-दीव-कृति कर्म पाठ ४ करेमिभंते सामाइयं-पाठ ५ आगार सूत्र पाठ ये पांच पाठ पढना सो सामायिक स्तव है फिर ६ कायोत्सर्ग (नौ बार जाप देना) और ७ चतुर्विंशतिस्तव ('थोस्सामि हं-आदि आठ गाथाएं') पढना सो एक कृतिकर्म कहलाता है।

ऐसे कृतिकर्म सामायिक में एक वंदना में दो स्वाध्याय में तीन और प्रतिक्रमण चार पढ़े जाते हैं।

कृतिकर्म में चार विधान

दुओणदं जहाजाद बारसावत्तमेव य
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे।

सामायिक स्तव की आदि में तीन आवर्त एक प्रणाम करना। सामायिक स्तव के अन्त में तीन आवर्त एक प्रणाम और एक ढोक करना फिर कायोत्सर्ग करना पीछे चतुर्विंशति स्तव को आदि मे तीन आवर्त और एक प्रणाम करना और 'स्तव' पढ़ चुकने पर तीन आवर्त एक प्रणाम और एक ढोक देना चाहिये।

कृतिकर्म (वन्दना) के ३२ दोष

वन्दना करते समय जो—

१-अनादर भाव से वदे सो 'अनादृत' दोष है। २-अकड-करखड़ा होवे सो 'स्तब्ध' दोष। ३-वद्य के अति समीप स्थित होवे सो 'प्रविष्ट'। ४-घुटनों और कुहनियों को आपस में भिडावे सो 'परिपीडित'। ५-शरीर को इधर उधर झुलावे सो 'दोलायित'।

६-अंकुश की भांति दोनों हाथ करे सो 'अंकुशित'। ७-कछुवे की भांति अंगों को सिकोड़े सो 'कच्छपरिंगित'। ८-मछली की भांति पार्श्वभाग से प्रणाम करे सो 'मत्स्योद्वर्त'। ९ वन्द्यके प्रति दुष्ट-भाव राखे सो 'मनोदुष्ट'। १०-दोनों कुहनियों से अपनी छाती को दबावे सो 'वेदिका-बद्ध'। ११-गुरु आचार्य से धमकाया जावे सो 'भय'। १२-गुरु आचार्य से डरे सो 'भयसात्'। १३-मैं संघ पूज्य बनूं' ऐसा भाव रक्खे सो 'ऋद्धि गौरव'। १४-अपने को ऊंचा माने सो 'गौरव'। १५-छिपकर वंदना करे सो 'स्तेनित'। १६-गुरु आज्ञा को भंग करे सो 'प्रत्यनीक'। १७-कलह विसवाद करके क्षमा नहीं करे सो 'प्रदुष्ट'। १८-दूसरे साथियों को धमकावे सो 'तर्जित'। १९-शास्त्रीय पाठ न बोलकर बातें करे सो 'शब्द'। २०-पाठ पढते हंसी मजाक करे सो 'हेलित'। २१-कटि, गरदन और हृदय पर बल (सलवटें) डाले सो 'त्रिवलित'। २२-भौंहे चढावे सो 'कुंचित' २३-इधर उधर देखे सो 'दृष्ट'। २४-देव या गुरु के सन्मुख खड़ा न रहे सो 'अदृष्ट'। २५-वंदना करने को इल्लत (बेगार) समझे सो 'संघकर मोचन'। २६-उपकरण आदि पालेवे तो वदना करे सो 'आलब्ध'। २७-उपकरण आदि की चाहना से वंदना करे सो 'अनालब्ध'। २८-पाठ और विधि में कमी करे सो 'हीन'। २९-आलोचना आदि पाठों में विलंब करे सो 'उत्तरचूलिक'। ३०पाठ को स्पष्ट न बोलकर मन में गुणे सो 'मूक'। ३१-पाठको ऐसा जोर से बोले कि दूसरों के पाठ आदि में विघ्न (भंग) पडजावे सो 'दर्दुर'। ३२-भैरवी कल्याण आदि रागों से स्वर साधकर पाठ पढ़े सो 'सुललित' दोष है।

कृतिकर्म मे इन बत्तीस में से एक भी दोष लगावे तो निर्जराका फल नहीं मिलता है ऐसी जिनाज्ञा है।

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

'मैं पूर्व कृत दोषों को निंदता हूँ, गर्हा करता हूँ, मेरे दुष्कृत मिथ्या हों 'ऐसा कहकर मन वचन काय से दोषों को शोधना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रति क्रमण के ७ भेद।

१–इरियावही—मार्ग में चलने में लगे दोषो का किया जाता है।

२–देवसिय—दिन मे लग दोषों का होता है और सायंकाल को किया जाता है।

३–राइय—रात मे लगे दोषों का होता है और प्रभात को किया जाता है।

४–पक्खिय–पन्द्रह दिनो में लगे दोषो का होता है। जो प्रत्येक चतुर्दशी को किया जाता है।

५–चाउम्मासिय—चार महीनो में लगे दोषों का होता है जो आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुण मास की सुदि चतुर्दशी को किया जाता है।

६–सवच्छरिय—बारह मासों में लगे दोषों का होता है जो भाद्रपद सुदि चतुर्दशी को किया जाता है।

७–उत्तमट्ठ—जीवन भर मे किये दोषों का होता है और सल्लेखना लेते समय किया जाता है।

प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

आगामी समय के संभावित दोषों को दूर करने के लिए जो वर्तमान मे त्यागने रूप प्रतिज्ञा करना उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रत्याख्यान में नियम रूप त्याग—

अपने इष्ट निरवद्य भोगोपभोग के साधनों का काल की मर्यादा लिये प्रत्याख्यान लेना सो नियम रूप त्याग है—
जिसका खुलासा इस प्रकार है:—

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्रांग राग कुसुमेषु ।
ताम्बूल वसन भूषण मन्मथ संगीत गीतेषु ॥८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति कालपरिच्छित्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

भोजन, सवारी, सेज, स्नान, शुद्ध शृंगारकी सामग्री, फूल, ताम्बूल, कपड, गहने, मैथुन, नृत्यवाद्य और गीत का समुदायरूप संगीत और गीत इन इष्ट पाचों इन्द्रियो के विषयो में आज के दिन आज की रात्रि पक्ष मास ऋतु (दो मास) और अयन (छह मास) तक समय के विभाग से त्याग लेना नियम होता है।

अनियत कालिक प्रत्याख्यान—

वायुयान या जल पोत मे बैठते समय तथा शयन करते उपद्रव ग्रस्त महावन दुर्गम पर्वत नदी और जलाशय मे प्रवेश करते समय या रोगादि की अवस्था मे 'मै अमुक स्थान आदि से पार न होजाऊं' तब तक मेरे आहार आदि का त्याग है इस प्रकार कार्य की मुख्य अपेक्षा रख कर प्रत्याख्यान करना सो अनियत कालिक प्रत्याख्यान कहलाता है।

प्रत्याख्यान का महत्त्व—

दैवादायुर्विरामे स्यात् प्रत्याख्यान-फलं महत् ।
संस्मृत्य गुरुनामानि कुर्यान्निद्रादिकं विधिम् ॥

दैव संयोग वश नियम लेने बाद जीवन का अन्त हो जाय तो त्याग का महान् फल होता है । इसलिए

पंच नमस्कार को चिंतवन करके प्रत्याख्यान लेकर निद्रा आदि कार्य करना चाहिए—

आगामी में प्रत्याख्यान के फल की सूचक कई कथाए वर्णित है जिनमें से एक कथा यशस्तिलक चपू में इस प्रकार है—

उज्जयिनी नगरी में एक चाडाल ने मृत्यु से पूर्व थोड़ी देर के लिए ही मांस भक्षण के त्याग का नियम लिया था सो मर कर यक्ष हुआ ।

कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ।

नियत्त समय तक शरीर से ममत्व छोड़ कर नमस्कार मंत्र का ध्यान करना सो कायोत्सर्ग है ।

पाठ जप और ध्यान का खुलासा

'पाठ' सब सुन सके परन्तु दूसरों के धार्मिक कृत्यों मे बाधा न पड़े ऐसे स्वर से बोलना चाहिए । और खुद तो सुन सके पर पास में बैठे लोग नहीं सुने ऐसे मन्त्र का बोलना सो 'जप' है इसे उपांशु पाठ भी कहते है । तथा माला अगुलि के पर्व आदि की सहायता के बिना उच्छ् वास विधि से नमस्कार के चिंतन को ध्यान या कायोत्सर्ग कहते हैं ।

जप विधि—

वचसा वा मनसा वा कार्यो जाप्यः समाहितस्वान्तैः
शतगुणमाद्ये पुण्यं सहस्रसङ्ख्यं द्वितीये तु।

यशस्तिलके।

एकाग्रचित्त हो कर जाप्य कीजिये। वचन से जाप्य करने में सौ गुणा पुण्य होता है और मन से जाप्य करने में हजार गुणा पुण्य है।

ध्यान की विधि—

सूक्ष्मप्राणयमायामःसन्नसर्वाङ्गसंचरः।
प्रावोत्कीर्ण इवासीत ध्यानानन्दसुधां लिहन्

—यशस्तिलके सोमदेवः।

पहले सास खींच कर श्वासोच्छ्वास लेने की क्रिया को साध कर सूक्ष्म कर लीजिये। जिससे चेष्टावाहिनी नाड़ियों में गति मंद होकर सर्वांग का बाहिरी संचार स्तब्ध होगा। शरीर में एक प्रकार की पूर्वापेक्षा लघुता प्रतीत होगी। शरीर में ऐसी निश्चलता होगी, मानो ध्यानी प्रस्तर में उकेरा हुआ-सा है। तब ध्यान की अनन्द सुधा का परम आस्वाद मिलेगा।

उच्छ्वास की विधि क्या है?

पहले उच्छ्वास में '*णमो अरहंताणं णमो सिद्धाण*' इन दो पदों को दूसरे उच्छ्वास में '*णमो आयरियाण णमो उवज्झायाणं*' इन दोपदों को और तीसरे उच्छ्वास में '*णमो लोए सव्वसाहूणं*' पद का उच्चारण करना यह णमोकार मंत्र की जाप्य विधि है

कौनसी क्रिया में कितने जाप्यों का विधान है—

दैवसिक प्रतिक्रमण मे १०८ रात्रिकप्रतिक्रमण में ५४ पाक्षिक में ३०० चातुर्मासिक मे ४०० और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में ५०० उच्छ्वासो से णमोकार मन्त्र के जाप्य का विधान है। और क्रियाओं में सर्वत्र २७ उच्छ्वास ही प्रायः लिये जाते हैं।

कायोत्सर्ग के ३२ दोष

कायोत्सर्ग (खडे आसन से ध्यान) में ३२ दोषों को टालना चाहिए।

१ घोटक दोष-एक टाग से खडे होना २ लता दोष-अंग उपांगों को हिलाना ३ ४ स्तम्भ और कुड्य दोष-खभा भींत का सहारा लेना ५ माल दोष रस्सी आदि का सहारा लेना ६ शबर वधू दोष-हाथों से गुह्यभाग छूना ७ निगल दोष-पैर से पैर लपेट कर खडे होना ८ लबोत्तर दोष-मस्तक को झुकाना और मस्तक को ऊचा करना ९ स्तनदृष्टि दोष वक्ष-स्थल (छाती) पर नजर करना १० वायस दोष-तिरछी दृष्टि करना ११ खलीन दोष-लगाम लगे घोडे की भांति दात घिसना और शिर हिलाना १२ युग दोष-गरदन निकाल कर खडे होना १३ कपित्थ दोष हाथो की मुट्ठी बांधना १४ शीष प्रकंपित दोष-मस्तक को धुनाना १५ मूकित दोष-नाक और मुह से सकेत करना १६ अगुली दोष-हाथो के पौरों पर गिनना १७ भ्रविकार दोष-भौंहों को नचाना १८ वारूणी पायी-मतवाले की भांति शरीर को घुमाना १९-२८ दिगालोकन दोष-दसों दिशाओं मे देखना २९ ग्रीवोन्नत दोष-गरदन को बार २ ऊची करना ३० प्रणाम दोष-गरदन को नीचो करना ३१ निष्ठीवन दोष थूंक गिराना या खासना ३२ अगमर्श-हाथों से उपांगो को छूना। कायोत्सर्ग में और भी दोष हो सकते है जिनसे मन को व्याकुलता संभव हो। ध्यान में इन दोषों को त्यागना चाहिए। इति।

आवश्यक-प्रयोगानुपूर्वी

सामायिकप्रयोगानुपूर्वी—

यदि सामायिक ही करना हो तो उसका क्रम यह है।

१–(पृष्ठ ३ से ६) प्रारंभ से लेकर तस्स उत्तरगुण-पाठ फिर (पृष्ठ १०) आगार सूत्र भी पढ़ कर इरियावही आलोचना पर्यन्त पढ़ें।

२–फिर (पृष्ठ ६ से १०) सामायिक स्तव के छह स्थल या पाठ पढ़ें।

३–फिर (पृष्ठ १० से १३) चउवीसत्थव की आठ गाथाएं पढ़ें। इस प्रकार एक कृतिकर्म पूरा पढ कर—

४–फिर (पृष्ठ १३ से १७) सामायिक की चौदह गाथाए अर्थ सहित पढे। फिर स्वाध्याय आदि शुभ योग करें।

५–समाप्त करते समय (पृष्ठ १८) सामायिक दोष प्रतिक्रमण पाठ पढ़ कर नौ जाप्य देवें।

चतुर्विंशतिस्तव-प्रयोगानुपूर्वी।

यदि स्तव ही करना हो तो उसका क्रम यह है।

सामायिक प्रयोगानुपूर्वी में निर्दिष्ट १-२ ३ क्रमानुसार पाठ पढ़ें। फिर वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र आप्तमीमांसा युक्त्यनुशासन जिनसहस्रनाम आदि विविध भावपूर्ण स्तोत्रो को इच्छानुसार पढ़ें।

विशेष—दूसरा क्रम पृष्ठ १६ पर लिखा है सो जान लेवें।

वन्दना–प्रयोगानुपूर्वी ।

यदि जिनालय में जाकर चैत्यवन्दन करना हो तो उसका क्रम आगे (पृष्ठ १६-२० पर) देववन्दन–चैत्यवन्दन प्रयोगानुपूर्वी में सविस्तार लिखा है तदनुसार पाठ पढे ।

प्रतिक्रमण प्रयोगानुपूर्वी ।

यदि दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण करना हो तो उसका क्रम यह है,

१–(पृष्ठ ३ से ६) इरियावही आलोचना पर्यन्त सब पाठ पढ़ें ।

२–फिर (पृष्ठ ५७ से ६०) बृहत्सिद्धभक्ति पर्यन्त सब पाठ पढ़ें ।

३–फिर (पृष्ठ ६३) सिद्धभक्ति आलोचना पाठ पढ़ें ।

४-फिर (पृष्ठ ६४-६५) आलोचना पाठ पढ़ें ।

५–फिर (पृष्ठ ६७ से ७७) 'इति प्रतिक्रमण पाटी' तक के सब पाठ पढ़ें । यदि कोई 'प्रतिक्रमण पाटी' के स्थान पर हिन्दी में प्रतिक्रमण पाटी (पृष्ठ ७७ से ८२) पढना चाहे तो पढ़ले ।

६–फिर (पृष्ठ ८३ से ९१) वीर चारित्र भक्ति तक के पाठ पढे

७–फिर (पृ० ९२) शान्ति०भक्ति कृत्यविज्ञापना पढे ।

८–फिर (पृ० ९२ से ९६) शान्तिभक्ति सग्रह के पाठों में से कोई एक पाठ पढे ।

९–फिर चतु० तीर्थंकरभक्ति संग्रह के पाठों मे से कोई एक पाठ पढे ।

१०–फिर (पृ० ९९ से १०१) शांति० भक्ति आलोचना से लेकर

समाधिभक्ति की कृत्य विज्ञापना तक पढ कर ६ जाप देवे।

११–फिर (पृ० ५० से ५५) समाधिभक्तिपाठ पढ कर 'आसही' तीन बार बोलें इस प्रकार प्रतिक्रमण समाप्त करे।

प्रत्याख्यान आनुपूर्वी

प्रत्याख्यान ग्रहण करना हो तो पृ० १०२ में लिखी विधि से करे।

कायोत्सर्ग आनुपूर्वी

(पृष्ठ १-३) 'काउस्सग्ग मोक्खपह'– आदि तीन गाथाए पढे

(पृष्ठ १०) आगार सूत्र पढें फिर शक्त्यनुसार ध्यान या जप करें।

सर्व आवश्यकानुपूर्वी

एक साथ सब आवश्यक कर्मों के करने का क्रम इस प्रकार है–

१–(पृ० ३ से ६) 'निसही' से इरियावही आलोचना तक के पाठ पढे।

२–फिर (पृ० २४-२५) देववन्दन विज्ञापन और चैत्यभक्ति कृत्य विज्ञापना पढें।

३–फिर (पृ० ६ से १३) कृतिकर्मसग्रह के चतुर्विंशति स्तव पर्यन्त सातों पाठ पढें।

४– फिर (पृ० २६ से ४०) चैत्यभक्ति सग्रह के छहों पाठ और चैत्यभक्ति की आलोचना पढे।

५–फिर (पृ० ४१ से ४३) पचगुरु भक्ति की कृत्य विज्ञापना पढ कर क्रम नंबर ३ के अनुसार कृतिकर्म के ७ पाठ पढ़ कर पंच गुरुभक्ति प्राकृत और पचगुरु भक्ति की आलोचना पढें।

६–फिर (पृ० ५७ से ७७) प्रतिक्रमण पीठिका से लेकर प्रतिक्रमण पाटी तक पढ़ें।

७–फिर (पृ० ८३ से ९१) प्रति० निसीहिय भक्ति आलोचना से लेकर वीर चारित्र भक्ति की आलोचना पर्यन्त पाठो को पढ़ें।

८–फिर (पृ० ९२ से १००) शान्ति चतु० भक्ति की कृत्य विज्ञापना पढ़ कर शान्तिभक्तिसंग्रह का और चतुर्विंशति तीर्थङ्कर भक्ति का कोई एक एक पाठ पढ़े।

९–फिर (पृ० ९९-१००) शान्ति भक्ति की आलोचना और प्रतिक्रमण आलोचना पाठ पढ़े।

१०–फिर (पृष्ठ १०२ से १०३) प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग को स्वीकार करके नौ बार जाप्य देवें।

११–फिर समाधिभक्ति की कृत्यविज्ञापना इस प्रकार पढ़ी जाय।

'अथ देववन्दनां प्रतिक्रमणं षडावश्यकं कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि दोषविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्'—

१२–फिर (पृ० १०) आगार सूत्र पढ कर नौ बार जाप्य देवें।

१३–फिर (पृष्ठ ५० से ५६) समाधि भक्ति संग्रह पाठ समाधिभक्ति आलोचना और तीन बार आच्छो पढें।

वन्दना मे दो बार और प्रतिक्रमण मे चार बार कृतिकर्म पाठ यथा स्थान बोलना न भूलें। इति ॥

विषय-सूची

समुच्चय सूची

सामायिकपाठादि संग्रह की पाठसूची

अशुद्ध पाठ पढना पाप है अतः पाठ को सुधार कर ही पढिये

संशोधन–पत्र

दृष्टिदोष आदि कारणों से कुछ पाठ अशुद्ध छप गये हैं उनका संशोधन इस प्रकार है।—सम्पादक

शुद्धिपत्र का सकेत–पहले पृष्ठ फिर पंक्ति अनन्तर अशुद्धि और फिर शुद्ध पाठ है।

द-५ सिए=लिये। द-८ आगामी=आगमों। अ-२१ आप ही=आसही। ५-१० पर्युपासक=पर्युपासन। ८-६ दोव = जीव। ८-८ परिणिब्बुदाण = परिणिब्बुदाण। २१-४ निषद्यो=निसद्या। २२-८ रिस=रिम। २३-१४ मिनेन्द्र=जिनेन्द्र। २५-५ पद्म चरिते रविसेण=पद्म चरिते रविषेणः। २५ २२ चार्य=चार्या। २७ ५ स्पेद=स्येद्। २८-८ सिद्धचार्यो=सिद्धाचार्यो। २८-१९ शान्त्पै=शान्त्यै। ३०-१६ कषाप=कषाय। ३२ १५ स्वम्यमुव'=स्वयम्भुवः। ३४-६ दुत= द्रुत। ४४ ७ प्रेज=पुञ्ज। ४४-८ उपाध्या=उपाध्याय। ४५-१८ सोक्ख=सिग्घ। ५०-७ विशुद्धचर्थ=विशुद्धयर्थं। ५०-१५ सद्धयानी=सद्ध्याना। ५१-१ चेतसा=चेतसाम्। ५१-२ भज इति सये=भुजे इति क्षिपेत्। ५१-६ स्व=स्वे। ५१-८ गुखो=गुरवो ५१-१४ इंधनो=इधनो। ५१-१६ पाता=खाता। ५२-१४ भम=मम। ५२-१५ संप्रामि=संप्राप्ति.। ५३-१६ जगत=तिजग ५५-१० सत्यथ=सत्पथ। ५६-२ मउमी=मज्झै। ५७-६ घिषते= धिपते। ५७-१६ एदेसिं=जीवा एदेसिं। ५९-१५ मत्ति-=भत्ति।

६०-७ सम्मुघादे = सम्मुग्घादे । ६४-४ देवसियम्मि = देवसियं । ६६-२० भावय = श्रावक । प्रतिलमण = प्रतिक्रमण । ६७-१४ ऽत्थु = ऽत्थु । ७०-२ पणिवदामि के आगे छूटा चिन्ह ● । ७२-१८ बच्छुल = बच्छल्ल । ७४-६ परिगहिदागमणेणवा = गमणेण वा इत्तरिया अपरिग्गहिद्दागमणेण वा ७७-२ मिती = मित्ती ८२-२० उसको पडिक्कमामि = उसको (पृष्ठ-७७ मे) पडिक्कमामि ८४-७ गम्मण = गमण, ८६-१६ जिनके = जिसके,६५-१७ नजि = तजि ।

पं० मिलापचन्दजी का अभिप्राय

(पृष्ठ १७ पर मुद्रित—मूर्धरुहमुष्टिवासो—आदि पद्यपर)

सामायिक में पद्मासन, उद्धासन, साधारण बैठना इनमें से किसी एक आसन से स्थिर होकर मस्तक के केश हिलते हों तो उन्हें बांध लेवें। बैठ कर सामायिक करता हो तो गोदी में हाथ पर हाथ धर लेवें (यह मुष्टि बंध हुवा।) कपड़ा फैला हुवा हो तो उसे भी बाध कर सकुचित कर लेवें। सामायिक के समय इस प्रकार की कीगई व्यवस्था को 'समय' कहते हैं। जब तक ऐसी व्यवस्था रहेगी तब तक ही सामायिक रहेगा। अर्थात् सामायिक के छूटते साथ उक्त व्यवस्था भी छोड़ दी जावेगी इसे 'यावन्नियम' कहते हैं।

सामायिक पाठादि संग्रह
विधि सहित

मंगल वचनम्

प्रायेण जायते पुंसां वीतरागस्य दर्शनम् ।
तद्-दर्शन-विरक्तानां भवेज्जन्माऽपि निष्फलम् ॥१॥

—आचार वृत्तौ वसुनन्दि.

श्री वीतराग देव का दर्शन मनुष्यों को प्रकृष्ट शुभ कर्म के उदय से प्राप्त होता है। जो वीतराग के दर्शन से विरक्त हैं—मिथ्या दृष्टि हैं उनका मानव जन्म पाना भी निष्फल है।

● ● ● ●

बुड्डइ जह पलाल्लहरं माणुम जम्मस्स पाणियं दिण्णं ।
जीवा जेहिं ण णाया णाउं ण य रक्खिया जेहिं ॥२॥

—द्वादसी गाथाया।

फूस की कुटिया जरा-सा हवा का झोखा लगा कि नष्ट हुई ऐसी ही हालत मानव देह की समझो, चन्द सांसों का खेल है। सांस आया कि नहीं आया। दुर्लभ नर तन पाकर जिन्होंने जीव के स्वरूप को नहीं पहिचाना और जान लिया तो क्या ? जीवों की रक्षा नहीं करी, मात्र हिंसा के ही उपासक बने रहे ऐसे लोगों ने नर तन को जलांजलि दे डाली समझिये।

● ● ● ●

मानुस भव पाणी दियौ जिन धरम न जाना
पाप अनेक उपाइके गये नरक निदाना।

—देवा ब्रह्मचारी

❀ श्री परमात्माने वीतरागाय नमः ❀

सामायिक पाठादि संग्रहः

ओं नमः सिद्धेभ्यः

१—निसही पाठः—

[क्रिया—देवालय में प्रवेश करते या पूजा, सामायिक, जिन दर्शन करते समय सर्व प्रथम शुक्ति मुद्रा से तीन बार पढ़ना ।]

निसही, निसही, निसही ॥

अर्थ—निसही = हे भगवन् ! मैं अपने चित्त में पापों का निषेध करता हूँ ।

२—इरियावहीशुद्धि-पाठः

[क्रिया—कायोत्सर्ग आसन से और शुक्ति मुद्रा से पढ़ा जावे ।]

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए विराहणाए, अणागुत्ते, अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे—पाण-चंकमणदाए, बीय-चंकमणदाए, हरिय-चंकमणदाए, ओस्सा-उत्तिंग-पणग दग-मट्टिय--मक्कडयतंतु -संताण-चंक-

मर्यादाए। उच्चार--पस्सवण-खेल--सिहाणाऽऽइ वियडि-पइट्ठावणियाए। जे मे जीवा विराहिया—एइंदिया वा बीइंदिया वा तीइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा पेल्लिदा वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिच्छिदा वा लेसिदा वा छिंदिदा वा भिंदिदा वा ठाणादो ठाण चंकामिदा वा।

३—'तस्स उत्तरगुणं' पाठ:—

तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहीकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पाव-कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ॥

अर्थ—हे भन्ते! हे गुरुदेव! मैं (आपकी आज्ञा लेकर) प्रतिक्रमण करू हूँ। ईर्या पथ की देख भाल कर मार्ग मे चलने सम्बन्धी विराधना मे मैंने जो अनागुप्ति के द्वारा मन वचन कायकी यद्वा तद्वा प्रवृत्ति के द्वारा, अधिक गमन किया हो, लाघ कर चला हो, स्थान पर ही चला हो, इधर उधर भटका हो, प्राणों (दो-तीन इन्द्रियो वाले जीवो) पर चक्रमण किया हो, बीज—(उगने की शक्ति वाले बीजों अथवा बीज पड़ी धरती) पर चंक्रमण किया हो, हरिता (दूब आदि वनस्पति) पर चक्रमण किया हो, ओस, उत्तिग-कीडो आदि का बिल, पणग-हरी काई, उदग-पानी मिट्टी और मकड़ी आदि के तने हुए जाले पर चंक्रमण किया हो बिना देखे बिना शोधे स्थान पर मलत्याग मूत्र-त्याग कफ सिणक (मुख नाक का मल) को त्यागा हो, इस प्रकार

से जो मैंने जीव विराधे हों, चाहे वे एकेन्द्रिय हों, या द्वीन्द्रिय हों या तीन इन्द्रियों वाले हों या चतुरिंद्रिय हों, या पंचेन्द्रिय हों वे इस प्रकार विराधे कि, चाहे अपने स्थान पर जाते रोके हों या अन्यत्र जाने के लिए प्रेरे हों, या उन्हें परस्पर भिड़ाये हों या एक ठौर ढेर कर दिये हों, या हैरान किये हों, या धूप मे तपाये, हों या कष्ट दिया हो, या चिपकाये हों, मसल डाले हो या छेदे हो या भेदे हो, या ठौर छुड़ाये हो तो उस दोष का उत्तार गुण हो–दोष मिट कर गुण प्राप्त हो, उसका प्रायश्चित करण हो व्यवहार मे निर्दोषपना हो—उसका विशुद्धि करण हो।

इसलिए अरहत भगवान को नमस्कार पर्युपासक जब तक मैं करता हू तब तक पाप कर्म वाली और दुश्चरित करने वाली काय को वोसराता हूँ त्यागता हूँ।

इसके बाद—'आगार सूत्र पाठ' (पृष्ठ १० पर से) बोलना।

४—इरियावही आलोचना

[*क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से पढा जावे।*]

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं।

पुव्वुत्तर पच्छिम-दक्खिण चउदिसाविदिसासु विहरमाणेण जुगंतर दिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा।

जो मे पमाददोसेण डवडवचरिआए वक्खित्त-पराहुत्तेण वा, हत्थ-पादपहारेण वा, पाण-भूद-जीवसत्ताणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अर्थ—हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैं ईर्यापथिक गमन सम्बन्धी दोषों की आलोचना करना चाहता हूँ। भव्य जीव को पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण चारों दिशा और विदिशाओं मे मार्ग में चलते हुए, जूंवे प्रमाण अन्तर से (चार हाथ दूर तक) भूमि पर नजर डाले रहना चाहिये। परन्तु ऐसा न करके जो मैंने प्रमाद दोष के कारण, डवडव चर्यिया द्वारा तेज चाल मे ऊंचा मुह किये हुए चलने से अथवा व्याक्षिप्त होकर उलटे मुह चलने से, या हाथ और पावो के प्रहार से जो प्राण भूत जीव और सत्वों का उपघात किया हो, कराया हो करने को सराहा हो तो उसका दुष्कृत मेरे मिथ्या हो।

अथकृति कर्म पाठ संग्रह

सामायिक स्तव

[क्रिया—कायोत्सर्गासन और शुक्ति मुद्रा मे तीन आवर्त और एक प्रणाम करना फिर शुक्ति मुद्रा से स्थित होना।

१ नमस्कार-मन्त्र पाठः—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥
एसो पंचणमोक्कारो सव्व-पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥

अर्थ—श्री अरिहन्तो को नमस्कार श्री सिद्धो को नमस्कार श्री आचार्यों को नमस्कार, श्री उपाध्यायो को नमस्कार, और समस्त लोक मे—ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक मे तिष्ठते सर्व साधुओं को नमस्कार।

पांचों परमेष्ठी को किया गया यह पंच नमस्कार सारे पापों को विनासने वाला है, सारे मंगलों में—लोक में माने जाते दधि अक्षतादि-द्रव्य मंगल क्षेत्र मंगल आदि में प्रधान मंगल है।

२ मंगलोत्तम शरण दंडक पाठ

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो चत्तारि सरणं पवज्जामि-अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अर्थ—ये चार ही मंगल हैं—पाप कर्म को गालने वाले और सुख के देने वाले है, और नाही। १ श्री अरहंत मंगल २ श्री सिद्ध मंगल । ३ श्री साधु मंगल और ४ केवलियों का बतलाया धर्म मंगल है।

ये चार ही लोकोत्तम हैं—अज्ञान तिमिर के विध्वंसक होने के कारण उत्कृष्ट है, और नाही। १ श्री अरहंत लोकोत्तम २ श्री सिद्ध लोकोत्तम ३ श्री साधु लोकोत्तम और ४ श्री केवलियों का बतलाया धर्म लोकोत्तम।

मैं इन चारों ही को शरण—रक्षक और आसरा मान प्राप्त होऊं हूँ। १ श्री अरहन्त शरण को प्राप्त होऊं। २ श्री सिद्ध शरण को प्राप्त होऊं। ३ श्री साधु शरण को प्राप्त होऊं और ४ केवलियों के बतलाये धर्म शरण को प्राप्त होऊं हूँ।

३ कृतिकर्म दण्डक पाठः—

अड्ढाइज्ज-दीव-दोसमुद्देसु पण्णारस कम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणो त्तमाणं केवलीणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारगयाणं, धम्मायरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्म-वर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किदिकम्मं।

अर्थ—अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों इत्यादि में विराजते अरिहंत, भगवंत, आदिकर—प्रथम धर्म के कर्ता, तीर्थङ्कर—तीर्थ के कर्ता, जिन जिनोत्तम, केवली आदि नामों के धारक अरिहंतों का सिद्ध, बुद्ध ज्ञानी, परिनिर्वृत—पूर्ण शान्त, या परम आनन्द युक्त, अन्तकृत—भव का अन्त कर चुके, पारंगत—संसार सागर को पार कर चुके (आदि नामों के धारक) सिद्धों का, धर्माचार्यों का, धर्म मार्ग के दर्शक उपाध्यायों का, धर्म के नायक धर्म रूपी चतुरंत भूमि के चक्रवर्तियों का (इत्यादि शुभ नामों से विख्यात) देवाधिदेव इन्द्र आदि देवों से पूजा प्राप्त-पंचपरमेष्ठियों का सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन तीन रत्नत्रयों का अभिवन्दन करता हूँ, विनय पूजा कर्म करता हूँ।

४ सामायिक-ग्रहण-प्रतिज्ञा-पाठः—

करेमि भंते ! सामाइयं, सव्वं सावज्जजोगं पच्चक्खामि *जावंणियमं दुविहं तिविहेण—मणसा वचसा कायेण, ण करेमि ण कारेमि ।*

[गृह त्यागी ६-१० ११ प्रतिमा के धारक श्रावक ऐसा पढ़ें—

जावंणियमं तिविहं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि अण्णं करतंपि ण समणुमणामि—]

तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताण णमोकारं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अर्थ—हे भंते ! हे भगवन ! आचार्य प्रवर ! मैं सामायिक करता हूँ और सारे सावद्ययोग को—मनकी, वचनकी और कायकी अशुभ क्रियाओ को त्यागता हूँ। यावन्नियम—जब तक का नियम लिया है तब तक दो प्रकार के सावद्य योग को तीन प्रकार से—मनसे, वचनसे और कायसे नहीं करता नहीं कराता हूँ। और हे भंते ! उस सामायिक संबधी अतिचार—दोष को पडिक्कमाता हूँ कि-मोधता हूँ तथा निंदता हूँ और अपनी गरहा करता हूँ। ४ जब तक अरहंत भगवन्त को नमस्कार करता और उपासना-पूजा करता हूँ तब तक पाप कर्मों और दुश्चरित्रों वाली कायको वोसराता हूँ-त्यागता हूँ शरीर से ममता हटाता हूं ।

५ आगार-सूत्र-पाठः—

अण्णत्थ ऊससिएणं वा, णीससिएणं वा, उम्मिसिएणं वा, णिमिसिएणं वा, खासिएणं वा, छिंकिएणं वा जंभाइएणं वा, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं वा, दिट्ठिसंचालेहिं वा, इच्चेवमाइएहिं सव्वेहिं असमाहिपत्तेहिं आयारेहिं अविराहियो होज्ज मे काउस्सग्गो।

अर्थ—उच्छ्वास = सांस लेना, या निश्वास—सांस फेंकना, या उन्मेष—पलकें उघाडना, या निमेष—पलकें मींचना या खांसना या छींकना या जंभाई लेना या सूक्ष्म अंगों का संचालन या सूक्ष्म दृष्टि का संचालन तथा इसी प्रकार के दूसरे सभी एकाग्रता के बाधक आगारों को छोड़कर मेरा कायोत्सर्ग अविराधित—पूर्ण होवे।

६ क्रिया और जाप देना

आगार सूत्र पढ कर फिर तीन आवर्त एक प्रणाम करके एक ढोक भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना फिर जिनमुद्रा और उद्भासन (कायोत्सर्गासन) से २७ उच्छ्वास में णमोकार मंत्र को ६ बार गुनना—(जाप देना)

- - - -

क्रिया—खडे होकर शुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़ कर तीन आवर्त और एक प्रणाम करके स्तव को पढना।

७ चउवीसत्थव [स्तव, चतुर्विंशतिस्तव] पाठः—

थोस्सामिऽहं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णर-पवरे लोय-महिए विहुय-रय-मले महापण्णे १
लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तइस्सं चउवीसं चेव केवलिणो २
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पह सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ३
सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल-सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणतं च जिणं धम्मं संतिं च वदामि ४
कुंथुं च जिण-वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदे अरिट्ठणेमिं पासं तह वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभिथुया विहुय-रयमला पहीणजरमरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय-वदिय-महिया एए लोगुत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियं पयासंता ।
सायर इव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

इति चतुर्विंशतिस्तव (थव) पाठः ॥

क्रिया—स्तव पढने के अनन्तर खडे २ शुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक प्रणाम और एक ढोक देना ।

१-जो 'जिनवर' है = सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणठाणे पर्यन्त के 'जिन' संज्ञा वालों में श्रेष्ठ है। जो 'तीर्थंकर' और 'केवली' हैं। 'अनन्त जिन' हैं अर्थात् अनन्त-संसार के विजेता तथा अनन्त-मिथ्यात्व कर्म के विजेता है। 'नरप्रवर' है = मनुष्यों में सबसे उत्तम है। 'लोकमहित है' = विश्वपूजित है। 'विधूत-रजोमल' हैं = रज (दोनों आवरण कर्म) और मल (मोह और अन्तराय कर्म) को नष्ट कर चुके है। 'महाप्राज्ञ' हैं= लोकोत्तर केवलज्ञान विद्या के धारक है, मैं उनकी स्तुति करूंगा।

२-जो 'लोकोद्योतकर' है,=भाव लोक को प्रकाशने वाले हैं, जो धर्मतीर्थ के कर्ता है, 'जिन' हैं =राग द्वेष विजयी है, 'वद्य' है=पूजने-उपासना करने योग्य हैं, 'अरिहंत' हैं, ऐसे श्री चौबीस केवलियों का कीर्तन करूंगा।

३-मैं १ श्री ऋषभनाथ को २ अजित को ३ सम्भव को ४ अभिनन्दन को ५ सुमति को ६ पद्मप्रभ को ७ सुपार्श्वनाथ को और ८ चन्द्रप्रभ जिनको वन्दता हूं।

४-मैं ९ सुविधिदेव या पुष्पदन्त को १०-११ १२ शीतल-श्रेयोनाथ वासुपूज्य को और १३ विमल को १४ अनन्तजिन को १५ धर्म को और १६ शान्ति जिनेन्द्र को वदता हूँ।

५-१७ कुंथु जिनवरेन्द्र को १८ अरनाथ को १९ मल्लि को २० सुव्रत (मुनिसुव्रत) को २१ नमिदेव को २२ अरिष्टनेमि को २३ पार्श्व को तथा २४ वर्द्धमान को वन्दता हूं।

६-इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो विधूत रजो-मल हैं, जरा-मरण दोनों से सर्वथा रहित है, ऐसे ये चौबीसों जिनवर मुझ पर प्रसन्न हों=उनके स्मरण से और चिंतन से मेरे कुशल परिणाम हो और प्रशस्ताध्यवसाय हो।

७—जो इन्द्रादि देवों से और मनुष्यों से कीर्तित वंदित और महित हुए हैं=स्तुति नमस्क्रिया और पूजा को प्राप्त हुए हैं, जो लोकोत्तम हैं, सिद्ध हैं,=निरंजन निर्विकार हैं, ऐसे ये चौबीसों जिन मुझे आरोग्य=सिद्धत्व अर्थात् आत्मशान्ति को, ज्ञान=भवभ्रमण नाशक बुद्धि को, समाधि=आत्म रूप में निष्ठा तथा बोधि=रत्नत्रय को प्रदान करें।

८—जो चांद से अधिक निर्मल हैं, सूरज की अपेक्षा अधिक प्रकाश करने वाले हैं, सागर जैसे गम्भीर हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मुझे सिद्धि प्रदान करें—उनके आलम्बन से मुझे सिद्धि प्राप्त हो।

विशेष—यदि केवल सामायिक ही करना हो तो पर्यंकासन और शुक्तिमुद्रा बांध कर ये सामायिक गाथाएं पढे और अर्थ चिंतन करें। गृहस्थ के निराकार सामायिक असंभव है सो प्रतिज्ञा में 'साकार और यावन्नियम' रूप ही सामायिक करें फिर स्वाध्याय आदि शुभोपयोग प्रारंभ करें।

सामायिक गाथा (मूलाचार से उद्धृत)

सव्व-दुक्ख-पहीणाणं सिद्धाणं अरहदो णमो।
सद्दहे जिणपण्णत्तं पच्चक्खामि य पावयं १
णमोऽत्थु धुद-पावाणं सिद्धाणं च महेसिणं।
संथरं पडिवज्जामि जहा केवलि-देसियं २
जं किंचि मे दुच्चरियं सव्वं तिविहेण वोस्सरे।
सामाइयं च तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं ३
बज्झऽब्भंतरमुवहिं सरीराइं च भोयणं।
मणेण वचिकायेण सव्वं तिविहेण वोस्सरे ४

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि य अलीयवयणं च ।
सव्वमदत्तादाणं मेहुणयं परिग्गहं चेव ५
सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणइ ।
आसाओ वोस्सरित्ता णं समाहिं पडिवज्जए ६
खामेमि सव्वजीवेऽहं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणइ ७
रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोग रदिमरदिं च वोस्सरे ८
ममत्ति परिवज्जेमि णिम्ममत्तिं उवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोस्सरे ९
आदा हु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोए १०
एगो य मरए जीवो एगो य उववज्जइ ।
एगस्स जाइ-मरणं एगो सिज्झइ णीरओ ११
एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा १२
संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरंपरा ।
तम्हा संजोगसंबंधं सव्वं तिविहेण वोस्सरे १३
जीवियमरणे लाहालाहे संजोगविप्पओगे य ।
बंधुऽरि-सुह-दुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम १४ इति

१—जो सांसारिक सारे दुखों से रहित हो चुके हैं, उन श्री सिद्धों को और अरहंतों को प्रणाम करके, मैं जिनेन्द्र के वचनों का श्रद्धान करता हूँ और पापों को त्यागता हूँ।

२—जो पापो को नष्ट कर चुके हैं, उन सिद्धों और महर्षियों को मेरा नमस्कार हो। तथा मैं जैसा केवलज्ञानी महात्माओं ने बतलाया है, वैसा रतनत्रय रूप साथरे को स्वीकारता हूँ—अपनाता हूं।

३—जो कुछ भी मेरी अशुभ-प्रवृत्तियां है, उन सभी को मैं त्रिविध भाव से—मन, वचन और काय से त्यागता हूँ तथा विकल्प भावरहित मन वचन काय सम्बन्धी सर्व सामायिक को करता हूं।

४—मैं बाहिरी और भीतरी सब उपधियों (परिग्रहों) को त्यागता हूँ, और शरीर॰ को=तन से ममता भाव को तथा सब आहारों को मन से वचन से काय से और कृत से कारित से अनुमोदना से वोसराता हूँ।

५—सारे जीवघात के आरम्भ को, असत्य भाषण को, सब चोरी को, मैथुन और परिग्रह को त्यागता हूँ।

६—मेरे सारे प्राणियों मे समताभाव है, किसी के साथ वर-भाव नहीं है। मै सारी आशा-तृष्णा को त्याग करके आत्म-स्वरूप का ध्यानरूप समाधि को अपनाता हूं।

७—सारे जीवों को मैं क्षमा करता हूं, सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करें सारे प्राणियों में मेरे मित्रभाव है किसी के साथ वैर नही है।

८—मै इष्ट के राग बंध को अनिष्ट में द्वेष को, हर्ष को दीनता को और उत्सुकता को भय और शोक को रति और अरति को वोसराता हूँ।

९—मैं निर्मम-भाव—अनाशक्ति को प्राप्त होकर ममता को त्यागता हूं। मेरे केवल आत्मा ही—शुद्धात्मा ही आलंबन (आधार) है, अवशेष सबको त्यागता हूं।

१०—ज्ञान में, दर्शन में और चारित्र में, प्रत्याख्यान में संवर में तथा योग में—समाधि मे मेरे आत्मा ही एक मात्र आधार है।

११—यह जीव एकला ही मरता है, एकला ही उपजता है, एकले के ही जन्म और मरण होते हैं एकला ही नीरज (कर्म रहित) होकर सीझता है—सिद्ध पद को जाता है।

१२—मेरा ज्ञान और दर्शन लक्षण वाला एक आत्मा ही शाश्वत है—सदा काल रहने वाला है। आत्मा के सिवाय शेष सारे बाहिरी भाव—पर पदार्थ संयोगलक्षण है अतएव नाशवान है।

१३—इस जीवने संयोग मूलक—दुःख परम्परा को पाया है—पर पदार्थों में ममता करने से अनादिकाल से अब तक चारों गतियों में नानाविध कष्ट उठाये हैं। इसलिए सारे संयोग जनित सम्बन्धों को त्रिविध—मन वच तन से त्यागता हूँ।

१४—जीवन और मरण मे, लाभ और हानि में, संयोग और वियोग में बन्धु और वैरी में, सुख और दुःख आदि में समता भाव का नाम सामायिक है।

सामायिक के पाठों में एक घडी वंदना पाठ में और प्रतिक्रमण पाठ में एक एक घडी जहाँ आवश्यक पारने में दो घड़ी-(पौण घंटा लगभग) लगता है।

(पृष्ठ ६ से १६ तक का अंश कम भग हो जाने से दुबारा छपाया गया है इसलिए आगे का पृष्ठ १७ का अंश अब व्यर्थ हो गया है।)

जीविदमरणे लाहालाहे संजोग-विप्पओगे य ।
बंधुऽरि-सुहदुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम १४

इति आचारशास्त्रोक्ता सामायिकार्थप्रतिपादनपरा गाथाः ।

अर्थ—१४—जीवन और मरणमे लाभ और हानिमें सयोग और वियोगमें बन्धु और वैरीमे सुख और दुःख आदिमें समता भावका नाम सामायिक है ।

इति सामायिक गाथा

सामायिकमें 'यावन्नियम' का खुलासा:—

मूर्धरुहमुष्टिवासो बन्धं पर्यङ्कबन्धनं चापि ।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञा ॥

रत्नकरण्डक पद्य ९८ वाँ

—भाव यह है कि सामायिक लेते समय मस्तकके केशोंको, मूठीको, कपडेके गाठको, दृढ आसन (पैरोंका) को, खडे आसनको किसी स्थान विशेषपर बैठकको, इनमेसे किसी एक को बाधकर 'मै जबतक इस बधको बांधे हुए हू तबतक मेरे सामायिक है' ऐसी गृहस्थको प्रतिज्ञा करना उचित है । ऐसा समय संबधी नियम जानना ।

विशेष-आज कल घडी यंत्र की सहायता से भी समयका नियम लिया जा सकता है ।

६ सामायिक-दोष-प्रतिक्रमण-पाठः—

(पारने का पाठ)

क्रिया—पर्यंकासन शुक्तिमुद्रासे पाठ पढना।

पडिक्कमामि भंते। सामाइयवदे, मणदुप्पणिधाणेण वा, वयणदुप्पणिधाणे वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदि-अणुवट्ठावणेण वा, जो मए अइचारो मणसा वचसा कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

क्रिया---इसके बाद णमोकार मंत्रका २७ उच्छ्वास से ९ बार जापदेना

इति सामायिकं नाम प्रथम आवश्यकं कर्म ॥१॥

अर्थ–हे भंते! हे गुरुदेव! मै आपकी आज्ञा लेकर पडिकमणा करता हूँ। सामायिक के व्रत मे जो मन को दुष्ट चिंतन मे लगाया होवे, वचन को दुष्ट भाषण मे लगाया होवे, काय को दुष्ट क्रिया में लगाया होवे, नियम पालन मे अनादर किया होवे या स्मृति को ठीक नहीं राखी होय, इन कारणों से जो मैंने अतिचार = दोष मन से वचन से काय से किया होवे वा कराया होवे वा करते को भला माना होवे उसका मेरे 'मिच्छा दुक्कड' होय = श्री भगवंत के प्रसाद से पाप मिथ्या होवे।

इस प्रकार सामायिक नामा प्रथम आवश्यक कर्म समाप्त हुआ ॥१॥

स्तव पाठ।

१ 'निसही—निसही—निसही' ऐसे ३ बार पढ़ना।

२ फिर सामायिक पाठ में से चौथे 'सामायिक ग्रहण प्रतिज्ञा पाठ' को (पृष्ठ ६ पर मुद्रित) पढ़कर णमोकारमन्त्र का ६ बार (२७ उच्छ्वास से) ध्यान करना।

३ फिर कायोत्सर्गासन और शुक्ति मुद्रासे सामायिकपाठ के अंतर्गत ७ वें चउवीसत्थव पाठ (पृष्ठ १० पर मुद्रित) को पढना।

नोट'—स्थिरता हो तो समंतभद्र सूरि रचित स्वयंभूस्तोत्र को सुनृत स्वर से पढना।

इति स्तवनामा द्वितीयं आवश्यकं कर्म ॥२॥

—— × ——

वन्दना पाठः—

देव वन्दन-चैत्यवन्दन प्रयोगानुपूर्वी।

१ देवालय पर पहुँचकर शुद्धजल से हाथ पांव धोना।

२ 'ओ नमः सिद्धेभ्यः। ओं जय जय जय नद वर्धस्व।' ये वाक्य सूनृत स्वर से पढ़ना।

३ 'निसही' इस पद को मंदिरजी के प्रवेश द्वार पर १, फिर मध्य भाग में पहुँचकर २, फिर प्रतिमाजीके सन्मुख पहुँचकर ३, इस तरह तीन जगह पर कहना।

४ फिर दर्शनपाठ को पढ़ते हुए तीन प्रदक्षिणा देना। (कुछ दर्शन पाठ आगे दिये गये हैं, वे या दूसरे पाठ भी इच्छानुसार पढ़े जा सकते हैं)।

५ प्रदक्षिणा मे चारो दिशाओमें ३-३ आवर्त और १-१ प्रणाम करना।

६ फिर जिन प्रतिमाके सामने इरियावही शुद्धिपाठको आलोचना पाठ सहित (पृ० ३ से ६ तक देखो) पढ़ना।

७ फिर बैठकर देववंदना विज्ञापना करना और बैठे बैठे ही.—

८ फिर चैत्यभक्तिका कृत्यविज्ञापना पाठ (पृष्ठ २५ पर) पढ़कर पहली कृत्यविज्ञापना करना।

९ फिर खड़े होकर भूमिस्पर्शनात्मक प्रणाम करना।

१० फिर सामायिक पाठके अन्तर्गत १ से ७ पाठों को क्रिया— विधि सहित पढना। ये पाठ चतुर्विंशतिस्तवपर्यंत है (पृ० ६ से १३ तक देखो)।

(यह चैत्यभक्ति का कृतिकर्म हुआ।)

११ फिर खड़े २ चैत्यभक्तिसग्रह के छह पाठ पढना और बैठकर चैत्यभक्ति का आलोचना पाठ पढना।

१२ फिर बैठे बैठे पचगुरुभक्ति का कृत्यविज्ञापना पाठ पढकर कृत्यविज्ञापना करना।

१३ फिर खड़े होकर आनुपूर्वी १० वीं के अनुसार १ से ७ पाठो को पढना।

(यह पचगुरुभक्ति का कृतिकर्म हुआ)

१४ फिर खडे ही पचगुरुभक्ति पाठ और बैठकर उसी भक्तिका आलोचनापाठ पढ़ना।

१५ फिर बैठे ही समाधिभक्ति का कृत्यविज्ञापन करके केवल णमोकार मन्त्रका ९ बार जाप देना और समाधिभक्तिपाठ आलोचना पाठ सहित पढना।

१६ देवालय से निकलते समय 'आसही आसही आसही' ऐसे यह पद तीन बार बोलना।

इस प्रकार देववंदनाप्रयोगानुपूर्वी जानना ॥

दर्शन पाठ–संग्रह

१ बृहद्—दर्शनस्तोत्रम्—

निःसंगोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यं
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् १

श्रीमत्पवित्रमकलङ्कमनन्तकल्पं
स्वायम्भुवं सकलमङ्गलमादितीर्थम् ।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये २

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ३

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुत ४

अद्याऽभवत्सफलता नयनद्वयस्य
देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ५

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ६

नमो नमः सत्त्वहितङ्कराय वीराय भव्याम्बुजभास्कराय ।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ७

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ८

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग
सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव ।
त्रैलोक्यनाथ जिनपुङ्गव वर्द्धमान
स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ६

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः १०

जयतु जिनवर्द्धमानस्त्रिभुवन-हित-धर्म-चक्रनीरजबन्धुः ।
त्रिदशपति-मुकुट-भासुर-चूडामणि-रश्मि रञ्जिताऽरुण चरणः ११

जय जय जय त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे
नुद नुद नुद स्वान्त-ध्वान्तं जगत्कमलार्क नः ।
नय नय नय स्वामिन् शान्तिं नितान्तमनन्तिमां
नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्र भवत्परः १२

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे
भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव ।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति
यश्चर्करीति तव देव स एव धन्यः १३

जन्मोन्माज्यं भजतु भवतःपादपद्मं न लभ्यं
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते
क्षुद्-व्यावृत्त्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः १४
रूपं ते निरुपाधिसुन्दरमिदं पश्यन्सहस्रेक्षणः
प्रेक्षा-कौतुक कारि कोऽत्र भगवन्नोपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणीं गद्गदयन् वपुः पुलकयन् नेत्रद्वयं स्रावयन्
मूर्धानं नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् १५
त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति
श्रेयःसूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणं
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन किं विज्ञापितैर्गोपितैः १६
त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटि-प्रभाभिरालीढपदारविन्दम्।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या १७

इति दर्शनस्तोत्रम् ॥

भाषा दर्शनस्तोत्र —

पुलकंत नयन-चकोर पक्षी, हँसत उर-इन्दीवरो।
दुर्बुद्धि-चकवी विलखि विछुरी, निविड मिथ्या-तम हरो॥
आनन्द-अम्बुधि उमगि उछरयो, अखिल आतप निरदले।
जिन-वदन पूरणचन्द्र निरखत सकल मन वाछित फले ॥१॥

मम आज आतम भयौ पावन, आज विघ्न विनाशियौ ।
संसार-सागर-नीर निवड्यौ, अखिल तत्त्व प्रकाशियौ ॥
अब भई कमला किंकरी, मम उभय भव निर्मल थये ।
दुख जरयौ, दुर्गति वास निवर्यौ, आज नव मंगल भये ॥२॥
मन-हरण मूरति हेरि प्रभु की कौन उपमा लाइये ।
मम सकल तन के रोम हुलसे हर्ष और न पाइये ॥
कल्याणकाल प्रत्यक्ष प्रभुको लखे जे सुरनर घने ।
तिह समय की आनन्द-महिमा कहत क्यौं मुखसौं बने ॥३॥
भर-नयन निरखे नाथ तुमको अवर वांछा ना रही ।
मन के मनोरथ भये पूरण रंक मानो निधि लही ॥
अब होहु भवभव भक्ति तुम्हरी कृपा ऐसी कीजिये ।
कर जोडि "भूधरदास" विनवे यही वर मोहि दीजिये ॥४॥

इति कवि-भूधर कृत भाषा दर्शनस्तोत्रम् ॥२॥

विशेष—भोजदेव भूपाल कृत जिनचतुर्विंशतिका संस्कृत और पं० दौलतरामकृत 'सकलज्ञेयज्ञायक'—आदि भाषादर्शन-स्तोत्र भी भावपूर्ण है—आदि आदि ॥

इस प्रकार दर्शनस्तोत्र पढकर प्रदक्षिणा देना उसके पश्चात् देववदनाविज्ञापना पढना ।

देववन्दना विज्ञापना

'नमोऽस्तु भगवन् ! देववन्दनां करिष्यामि ।'

अर्थात्—हे भगवन् आपको नमस्कार हो, अब मैं देव-वन्दना करूँगा ।

यह वाक्य बोलकर पचांग नमस्कार करना तथा गुरु या देव के समक्ष आसन से बैठकर ये अग्र मगल श्लोक पढना:—

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् १
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमङ्गलम् २

(—पद्मचरिते रविसेण सूरि.)

अर्थ—जो सिद्ध-कृतकृत्य है, सारे मंगलरूप प्रयोजनोंकी सिद्धिके उत्तम कारण है, रत्नत्रयधर्म के प्रतिपादक है, जिनके चरणकमलों मे इन्द्र आदि देवगण नतमस्तक हुए हैं और जो त्रिभुवनमे मंगलरूप है उन श्री महावीर प्रभु को मै नमन करता हूँ।

क्रिया—इसक अनन्तर सामायिक स्वीकार करनेनिमित्त इस प्रकार पढना—

नमोऽस्तु भगवन् ! प्रसीदंतु प्रभुपादाः । वंदिष्येऽहं सर्व-सावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि ।

—अर्थात हे भगवन् ! आपको नमस्कार हो, श्रीप्रभुजी प्रसन्न होवे। (आपकी भक्ति से मेरे प्रशस्त परिणाम) होवे। मै वदना करने वाला हूँ, अतएव सारे सावद्य योगो म विरत हुआ हूँ।

क्रिया—इसके अनन्तर चैत्यभक्ति का कृत्य विज्ञापना पाठ बैठ कर पढ़ना।

चैत्यभक्ति कृत्य विज्ञापना:—

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्निक-आपराह्णिक) देववन्दनायां पूर्वाचार्यनुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदना स्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं कुर्वे।

(पूर्वदिन सम्बन्धी-मध्यदिन सम्बन्धी-अपरदिन संबंधी) देववन्दना में।

अब पूर्वाचार्योंके क्रमानुसार सकलकर्मों के क्षय निमित्त मैं भावपूजा वंदना और स्तव समेत चैत्यभक्तिका कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—फिर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को पढ़ना फिर आगे के चैत्यभक्ति के छह पाठ पढ़ना।

चैत्य-भक्ति-संग्रहः

१ 'जयतु भगवान्'-स्तोत्रं

[देव-धर्म-वचन-ज्ञान-स्तुतिः]

क्रिया—वन्दनामुद्रा और कायोत्सर्ग आसन से पढना।

जयतु भगवान् हेमाऽम्भोज-प्रचारविजृम्भिता—
वमर-मुकुट-च्छायोद्गीर्ण-प्रभा-परिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्पर-वैरिणो
विगत कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।१।
तदनु-जयतु श्रेयान् धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद् योऽसौ विपाशयति प्रजाः।

विशेष—इस संग्रह मे श्वेतांबरो मे कुछ और दि० माथुरसंघ में कुछ और पाठ बोले व पढे जाते हैं। दि० मूलसंघ मे ये ६ पाठ बोले जाते हैं।

परिणत-नयस्यां-ऽङ्गीभावाद् विविक्त-विकल्पितं
भवतु भवतस् त्रातृ त्रेधा जिनेंद्र-वचोऽमृतम् ।२।
तदनु जयतात् जैनी वित्तिः प्रभङ्ग तरङ्गिणी
प्रभव-विगम-ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी ।
निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय मव्ययम् ॥३ ॥इति॥

१—जयतु भगवान स्तोत्र का अर्थ

१—जिन्होंने सुवर्णमयी कमलों के मध्य मे गमन करके शोभा पाई है और भक्तिसे नत-मस्तक हुए देवगणके मुकुटोंके शिखरोंपर लगी मणियोंकी चमक से दीप्ति बढाई है, ऐसे जिनके चरणयुगलको शरण रूप प्राप्त होकर पापी से पापी, मान कषाय से उद्धत और परस्पर वैरी भी=सांप नेवला आदि प्राणी अपनी कलुषता त्यागकर विश्राम को प्राप्त हुए=परमशांत बने, वह अहिंसा का प्रतिष्ठान-परम अहिंसक जिनेन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट बनकर आज भी विश्व के हृदय में विराजो ।

२-तदनन्तर जो कल्याण रूप है, जो 'प्रवृद्ध-महोदय' है= पूर्वकाल में स्वर्गादि के और नरलोकके उत्तमोत्तम पदों पर अपने प्रभाव से प्राणी को बढ़ा चुका है, तथा आज भी, जो प्राणियों को नरक निगोद आदि कुगतियों के निमित्तभूत मिथ्यामार्ग के क्लेशों से छुटकारा दिलाता है ऐसा जिनेन्द्र का वह रत्नत्रय-धर्म जयवंत हो जो द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा 'अनादि-निधन' है तो भी पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा 'गणधरो के रचे हुए' कहे जाते हैं वे अगपूर्व और प्रकीर्णक रूप तीन प्रकार के जिन वचनामृत विश्व की संसार बन्धन से रक्षा करने वाले होवे ।

३—जो सप्त भंगों और अनन्त भंगो रूप तरंगों वाली है द्रव्य का उत्पत्ति स्थिति और संहार रूप त्रिविध स्वभाव दर्शाने वाली है ऐसी जिनेन्द्रकी वित्ति = ज्ञान, केवलज्ञान निरुपम सुख के द्वार रूप मोह कर्म को हटा कर निरर्गल = विघ्नकर्म रहित और विगतरज = ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म रहित अविनाशी और निर्दोष मोक्ष को प्रदान करे।

२—दश-पद-स्तोत्रम्

अर्हन्सिद्धाऽऽचार्योपाध्यायेभ्यस् तथा च साधुभ्यः।
सर्व-जगद्-वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः १

मोहादि-सर्व दोषाऽरि घातकेभ्यः सदाहत-रजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजाऽर्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः २

क्षान्त्याऽऽर्जवाऽऽदि गुणगण सुसाधनं सकललोकहितहेतुम्
× सुख-धामनि धातारं वंदे धर्म जिनेन्द्रोक्तम् ३

मिथ्याज्ञानतमो वृत लोकैक-ज्योतिरमित-गमयोगि।
साङ्गोपाङ्गमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे ४

भवनविमानज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक-विश्व चैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ५

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाऽधिपाऽभ्यर्च्य-तीर्थकर्तॄणाम्।
वन्दे भवा-ऽग्नि-शान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ६

× शुभ धामनि प्रतिया का पाठ है।

इति पञ्च महापुरुषा प्रणुता जिन-धर्म-वचन-चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ७

अर्थ १—समस्त जगत् के वन्दनीय और सर्वत्र तीनो लोकों मे विराजमान सारे अरहंतो, सिद्धो, आचार्यो, उपाध्यायो और साधुओ को नमस्कार हो ।

२—जो मोह आदि समस्त दोष रूपी शत्रुओ के घातक हैं, 'सदाहत-रज' हैं=ज्ञानावरण दर्शनावरण रूप रजको नष्टकर चुके हैं, अन्तराय कर्म रहित है अर्थात् घातिकर्म रहित हैं, और त्रिलोकी के पूजायोग्य है, उन अरहंतो को नमस्कार हो ।

३—जो क्षमा, आर्जव आदि गुणो का साधन है, लोकोपकारक है सुखधाम=मोक्ष मे पहुँचाने वाला है, ऐसे जिनेन्द्र-कथित धर्म को मैं वन्दता हूँ ।

४—जो मिथ्यात्व और अज्ञान रूपी तिमिर रोग से दुःखी लोको को अपूर्व ज्योति रूप है, तथा अपरिमित-ज्ञान का दाता है, 'अजेय' है=प्रमाण नय से सकल दृष्टियो मे वस्तु स्वरूप को बतलाने वाला होने से एकान्तवादों के अबाध्य है, ऐसे अंग-उपांग समेत जिनवचन को मै वंदता हूँ ।

५—त्रिलोकी-पूजित श्री जिनेन्द्र की उन समस्त प्रतिमाओं को—जो भवनलोक, विमानलोक, ज्योतिर्लोक और व्यंतरलोक इन चार देवलोको के आवासो में और नरलोक मे वर्तती हैं, मै मन, वचन, काय को शुद्ध करके वंदता हूँ ।

६—जो त्रिभुवन के अधिपतियो—इन्द्र असुरेन्द्र और राजेन्द्रो से वंद्य्स सार सागर से पार पहुँचे हैं ऐसे श्री तीर्थङ्करो

के त्रिलोकवर्ती चैत्यालयों को मैं संसार-ताप की शांति के लिये वंदता हूँ।

●—इस प्रकार स्तुति किये गये श्री पंच परमेष्ठी, जिनेन्द्र तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी धर्म, वचन, प्रतिमाएँ और भवन मुझे ज्ञानी जनों के इष्ट निर्मल बोधि = रत्नत्रय, को प्रदान करें।

३—जिन-प्रतिमा-स्तवनम्

अकृतानि कृतानि चा-ऽप्रमेय—
द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजाऽमर-पूजितानि वन्दे
प्रतिबिम्बानि जगत्-त्रये जिनानाम् १

द्युति-मण्डल-भासुरा-ऽङ्ग-यष्टीः
भुवनेषु-त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः
वपुषा-ऽप्रतिमा जिनोत्तमानां
प्रतिमाः प्राञ्जलि रस्मि वन्दमानः २

विगताऽऽयुध-विक्रिया विभूषाः
प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनोत्तमानाम्।
प्रतिमाः प्रतिमा-गृहेषु कान्त्या—
ऽप्रतिमाः कल्मष-शान्तयेऽभिवन्दे ३

कथयन्ति कषाय-मुक्ति-लक्ष्मीं
परया शान्त-तया भवान्तकानाम्।

प्रणमाम्यभिरूप-मूर्तिमन्ति
प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ४
यदिदं मम सिद्ध-भक्ति-नीतं
सुकृतं दुष्कृत-वर्त्म-रोधि, तेन—
पटुना जिन-धर्म एव भक्तिर्
भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ५

अर्थ १—जो देदीप्यमान मंदिरों मे विराजमान हैं, महाकान्ति को धारती हैं, मनुष्यों और देवों से पूजित हैं ऐसी तीन लोक सम्बन्धी समस्त अकृत = शाश्वत और कृत = धातु पाषाण आदि निर्मित जिन प्रतिमाओ को मैं वंदता हूँ।

२—जो प्रभा मण्डल से दीप्तिमान है, दिखने में अनुपम आकृति वाली है ऐसी तीनो लोको में वर्तती जिनेन्द्र की प्रतिमाओं को मुक्ति और अभ्युदय के निमित्त मै अजलि जोड़कर वंदता हूँ।

३—जो आयुधों और कटाक्षादि अंगविकारों तथा विविध वेषभूषा से सर्वथा रहित है दिखने मे 'प्रकृतिस्थ' = परम शांत हैं चमक में अनुपम हैं ऐसी चैत्यालयों में विराजमान जिनेश्वरो की प्रतिमाओं को मै पापों की शांति के लिये वंदता हूँ।

४—जो अपनी परम शान्त मुद्रा से कषायो के अभावरूप लक्ष्मी को = आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्रकट करती हैं ऐसी संसार के नाशक जिनेश्वरो की प्रतिमाओं को मैं विशुद्धि के लिए वंदता हूँ।

५—इस प्रकार सिद्धभक्ति=चैत्यभक्ति के करने के द्वारा जो मुझे पाप पथ का रोकने वाला यह प्रशस्त पुण्य प्राप्त हुआ है इसके प्रभाव से मुझे भवभव मे जैनधर्म मे ही दृढभक्ति मिलती रहे, यही मेरी अभिलाषा है।

४—विश्व चैत्य चैत्यालय कीर्तनम्

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम्
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये १

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये २
श्रीमद् भावन-वासस्थाः स्वयं-भासुर-मूर्तयः
वंन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमा परमां गतिम् ३

ये व्यन्तर-विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च सङ्ख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे ४
ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुत सम्पदः।
गृहा स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ५

वन्दे सुर-तिरीटाऽग्रमणि-च्छाया-ऽभिषेचनम्।
याः क्रमैरेव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धि लब्धये ६

इति स्तुतिपथा-ऽतीत-श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव निरोधिनी ७

१—जो सर्वभाव हैं=परिपूर्णचारित्र के धारी है, क्षायिक दर्शन और केवलज्ञान सपदा से युक्त है, ऐसे श्री अरहन्तों के चैत्यो को मै अपने भावों में विशुद्धि के निमित्त बुद्धि के अनुसार स्तवूंगा—अर्थात् जिन-बिम्बो की स्तुति करूँगा।

२—लोक मे जितने भी अकृत और कृत चैत्य है उन सबको मैं विभूति के निमित्त वदता हूँ।

३—जो भवनवासी देवो के देदीप्यमान आवासो में स्थित है, अनादि सिद्ध और चमकवाली है ऐसी जिनप्रतिमाए वन्दना की गई हमें परम गति को प्रदान करे।

४—व्यन्तर देवो के विमानो मे जो शाश्वत और गणनातीत चैत्यालय हैं, वे हमारे दोषो के नाश का कारण बने।

५—ज्योतिर्लोक के विमानो मे जो अकृत्रिम और अद्भुत सपदा वाले चैत्यालय है उनको मै नमता हूँ।

६—विमानवासी देवो के मुकुटो के शिखरो पर जड़े हुए रत्नों की प्रभा रूपी जलधारा के अभिषेक को जो अपने चरणों के द्वारा प्राप्त करती है अर्थात् जिन्हे स्वर्ग के देव सदा पूजते है ऐसी स्वर्गों की अकृत्रिम प्रतिमाओ को मै सिद्धि की प्राप्ति के लिये वंदता हूँ।

७—वचनो से अवर्णनीय कांति के धारक श्री अरहतो के चैत्यो की इस प्रकार की गई स्तुति मेरे समस्त आस्रवो को रोकने वाली हो—स्तुति के प्रभाव से नवीन कर्मो का आगमन रुके।

५—'अर्हन्-महानद'—स्तव:

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवन-भव्य-जन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-
प्रक्षालनैक-कारणमतिलौकिक-कुहक-तीर्थमुत्तमतीर्थम् १

लोका-ऽलोक-सुतत्त्व-प्रत्यवबोधन-समर्थ दिव्य-ज्ञान–
प्रत्यह-वहत्-प्रवाहं, व्रत-शीलाऽमल विशाल-कूल-द्वितयम् २
शुक्लध्यान स्तिमित स्थित राजद् राजहंस राजित मसकृत्
स्वाध्याय मन्द्र घोषं नानागुण समिति गुप्ति सिकता सुभगम्
क्षान्त्यावर्त सहस्रं सर्वदया विकच कुसुम विलसल्लतिकम् ३
दुस्सह परीषहाख्य द्रुत-तर रङ्गत्तरङ्ग भङ्गुर निकरम् ४
व्यपगत कषाय फेनं राग द्वेषाऽऽदि दोष शैवल रहितम् ।
अत्यस्त मोह कर्दम मतिदूर निरस्त मरण मकर प्रकरम् ५
ऋषि-वृषभ-स्तुति मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध विहग-ध्वानम्
विविध-तपो-निधिपुलिनं सास्रव-संवरण-निर्जरा निस्रवणम्
गणधर-चक्रधरेन्द्र-प्रभृति-महाभव्य पुण्डरीकैः पुरुषैः
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुष-मलाऽपकर्षणार्थममेयम्
अवतीर्णवतः स्नातुं ममा-ऽपि दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्
व्यपहरतु परम पावन मनन्य जय्यस्वभाव भाव गभीरम् ८

१—श्री अरहंत परमेष्ठी रूप महानदका परम उत्तम तीर्थ है, वह सदाकाल तीन लोकवर्ती भव्य जीव रूपी तीर्थ यात्रियों का पाप पखालने मे प्रधान कारण है, तथा लौकिक मिथ्या तीर्थों से बढा चढा है ।

२—उस तीर्थमे लोक और अलोक तथा जीवादि तत्त्वोंके जाननेमे समर्थ दिव्यज्ञानका प्रवाह सदाकाल बहता रहता है और उस तीर्थके व्रत और शील रूपी दोनोंबाजू दो किनारे बने हैं ।

३—वह तीर्थ शुक्लध्यानमें दृढ आरूढ हुए ऋषियो रूप राजहंसो से सेवित है, निरंतर पढ़े जाते उत्तमोत्तम सिद्धान्त ग्रंथोके स्वाध्यायरूप गंभीर ध्वनि को लिये हुए है तथा नाना प्रकारकेगुण, समिति और गुप्ति रूपी बालुकासे परमरमणीय है।

४—उस तीर्थमे परम क्षमाके सहस्त्रों आवर्त-भौंण हैं, तथा विश्व भूत-दया रूपी लता लहलहारही है, दुःसह परीषह उग्र कायक्लेश तप रूपी वेगवान् तरगकी सलवटें पड़ रहीहैं।

५—उस तीर्थमेसे कषाय रूपी फेन मिट चुका है, राग-द्वेष आदि दोष रूपी सेवाल हट चुका है, मोहरूपी कीचड सूख चुकाहै, और पुनर्जन्मका कारण मरणरूप मगर दूर किया जा चुका है।

६—उस तीर्थ पर ऋषि-महर्षियो द्वारा कीजाती स्तुति गंभीर घोष रूपी अनेक पक्षियोंकी चहचहाट है, नाना प्रकार के तपस्वी रूपी पुल हैं संवर निर्जरा रूप झरने झर रहे हैं।

७—गणधर, चक्रवर्ती और इन्द्र आदि महाभव्योत्तम अनेक पुरुष अपने अशान्ति तथा पाप मलको धोनेके निमित्त उस तीर्थ में स्नान कर चुके हैं। इस तरह वह 'अर्हन्महानद-तीर्थ अमेय' = महान् है।

८—अबाधित स्वभाव वाले जीवादि पदार्थो से गंभीर रूप वह परमपावन 'अर्हन्महानद तीर्थ' नहाने के लिये उतरे हुए —अर्हत्स्वरूप-चिंतन मे तल्लीन हुए मुझ भव्यके भी समस्त महा पाप-दूर कर देवें।

६—जिनरूप-स्तवनम् ।

अताम्र-नयनोत्पलं सकल-कोप वह्नेर्जयात्
कटाक्ष-शर- मोक्षहीन-मविकारितोद्रेकतः ।
विषाद-मद हानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् १

निराभरण-भासुरं विगत-रागवेगोदयान्
निरम्बर-मनोहरं प्रकृतिरूप-निर्दोषतः ।
निरायुध-सुनिर्भयं विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमान्
निरामिष सुतृप्तिमद् विविधवेदनानां क्षयात् २

मित-स्थित-नखाङ्गजं गत-रजो-मल-स्पर्शनं
नवाऽम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयम् ।
रवीन्दु-कुलिशाऽऽदि-दिव्य-बहु-लक्षणाऽलङ्कृतं
दिवाकर-सहस्र-भासुरमपीक्षणानां प्रियम् ३

हितार्थ-परिपन्थिभि प्रबल-राग-मोहादिभिः
कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते ।
सदाऽभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वत
शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डलमिवोत्थितं दृश्यते ४

तदेतदमरेश्वर-प्रचल-मौलि-माला-मणि-
स्फुरत्किरण-चुम्बनीय-चरणा-ऽरविन्दद्वयम् ।

पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थ-गुरुरूप-दोषोदयैः ५

१-हे जिनेन्द्र देव ! आपने समस्त क्रोध रूप अग्नि ज्वाला को शान्त कर दिया इसलिये आपके नेत्रों मे लाली नाम मात्र भी नही पाई जाती आपने काम वासना को विघटित करके बहुत बढे चढे निर्विकार भावो को पा लिया, इसलिये आपकी दृष्टि सरल, स्वाभाविक, अथच कटाक्षपात से रहित नासिकाग्रपर बिल्कुल स्थिर हो रही है। आपने विषाद (रज) और अहकार को नसादिया, इसलिये मुस्कराता हुआ सा यह मुख आपके हृदय की परम विशुद्धि को मानो बतला रहा है।

२—हे प्रभो ! आपका परमौदारिक शरीर आभूषणो के बिना ही दिप रहा है, इसलिये कि उसके द्वारा राग का अस्तित्व मिटाया जा चुका है। वस्त्रो के बिना ही मनोहर लगता है, इस-लिये कि उसके प्रकृति गत रूप मे कोई दोष नही है। आयुधो के बिना ही निर्भय बना हुवा है, इसलिये कि उसमे हिंस्य (मारने योग्य) और हिसाका क्रम नष्ट हो चुका है, और आहार के बिना ही परम तृप्त प्रतीत होता है, इसलिये कि उसमे नाना प्रकार की वेदनाए (तज्जनित दु खानुभव) नाश होचुकी हैं।

३—आपका रूप नखकेशोकी वृद्धिसे विवर्जित है, रज (धूल) और मलके स्पर्शसे रहित है, ताजा कमल और चन्दनकी सी मनमोहक गध को लिये हुए हैं, सूरज-चाद-वज्र आदि अनेक शुभ लक्षणों से भूषित है, तथा हजार सूरज जैसी चमकवाला होते हुए भी नयनाभिराम है।

४—यह प्राणी आत्माके हितरूप प्रयोजन में बाधक बने हुए प्रबल राग मोह आदि विभावोंके निमित्तसे मलिन-चित्त बना हुवा है। सो आपके रूप को (एकबार भी भावपूर्वक) देखले तो शुद्ध हृदय हो जाता है तथा लोक मे जो योगीजन सदाकाल अपने सन्मुख ही आपके रूपको देखा करते है मानो उन्हे तो यह उगते हुए शरद की पूनम के चाद-सरीखा दिखता है।

५—हे भगवज्जिनेन्द्र ! भक्ति से नतमस्तक हुए इन्द्रोंके मुकुटों मे लगे हुए रत्नो की प्रभा से आपके दोनो चरण चूँबने योग्य बने हुए है ऐसा वही यह आपका रूप सारे विश्व को पवित्र करे, कि जो अन्य (एकान्त मिथ्या) तीर्थों के गुरु रूप (मिथ्यात्व रूप) दोषोदयस (दोषो के उदय से, अथवा दोषा=रात्रिके बढ जाने से) अधा किया जा चुका है--जिस विश्व की समस्त प्रजा को मिथ्या मतो के कारण बुद्धि होते हुए भी सत्यार्थ मुक्ति का मार्ग नहीं सूझरहा है ॥

जिनरूप स्तवन का हिन्दी रूपान्तर

छन्द ३१ मात्रिक

लोचन लाली-रहित शान्त बतलाते, जीता तूने रोष,
दृष्टि कटाक्ष-हीन कहती, नहीं तुझमे काम-विकृतिका दोष।
मद-विषादको दई जलाजलि, यो यह हसती-सी अभिराम,
सौम्य-मुखाकृति तथा बताती, शुद्ध हृदय तू आतमराम ॥१॥
राग-भावका नाश किया, यों पास न तेरे भूषण-सार,
है निर्दोष सहज-सुन्दर तन, यों नहीं वस्त्रों का शृङ्गार।

द्वेष छोडि तू बना अहिंसक-निर्भय, यो न पास हथियार
विविध-वेदनाओंके क्षयसे सदातृप्त तू बिन आहार ॥२॥
मल मूत्रादिकका न अशुचिपन, सोहैं परिमित नख अरु केश,
भीनी-चन्दन-कमलसी-परिमल महकत सारे देह-प्रदेश ।
रवि-शशि-वज्र-यथाऽऽदि सुहाते सहस अठोत्तर चिह्न अशेष,
सूर्य सहस्र समान कांतिमय तदपि नयन-प्रिय तेरा भेष ॥३॥
राग मोह मिथ्यात्व महारिपु छिन का भान न होनेदेत,
इनके वश जगवासी भूले मोह–नींद मे पडे अचेत ।
निरखै पलक खोल जो तुझको होते क्षणमे शुद्ध सचेत,
योगिजनो के मन वसती छवि तेरी किधौ उदित शशि श्वेत ।४।
बीता काल अनन्त जगतमे भ्रमते मिला न सुखका लेश,
जिनवर ! तू सच्चा सुख पाया यो तेरे पद नमत सुरेश ।
मिथ्यामति पाखडि तिमिरसे अन्ध बने जो पाते क्लेश,
वे जिनरूप-ज्योति मनमे धर मेटो अपने सारे क्लेश ॥५॥

—अनुवादक—दीपचन्द पांड्या

चैत्यभक्ति-आलोचना दंडक पाठ ।

क्रिया—बैठे आसन वन्दना मुद्रा से पढना ।

इच्छामि भंते । चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमा-ऽकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोयेसु, भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिया त्ति चउ-व्विहा देवा सपरिवारा, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण,

दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चेंति, पूजेंति, वंदंति, णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि। दुक्ख-खओ, कम्म-खओ, बोहि-लाहो, सुगइ गमणं, सम्मं, समाहि-मरणं जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं॥

इति चैत्यभक्तिसंग्रहः॥

इति देववन्दनाया प्रथम कृतिकर्म

हे भते। हे गुरुदेव मैंने चैत्यभक्ति सबधी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हू।

अधो लोक तिर्यग-लोक ऊर्ध्व-लोक मे पाताल मर्त्य और देवलोक मे जो कृत्रिम और अकृत्रिम जिन चैत्य है, उन सबको तीनो ही लोको मे भवनवासी व्यतर ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने अपने परिवार समेत जाकर दिव्य गधसे, दिव्य पुष्पसे दिव्यधूपसे दिव्य चूर्णसे, दिव्य वास (सुगधि) से और दिव्य स्नान (अभिषेक) से सदाकाल अर्चते, पूजते, वदते और नमते हैं॥

मै भी उन सबको (उन लोको म अधोलोक आदि मे विद्यमान चैत्योको) अर्चता हू, पूजता हू, वदता हू, नमता हूँ॥

(भाव से की गई चैत्य भक्ति के द्वारा उपार्जित सुकृत के प्रभाव से-मेरे दु:खो का क्षय होवे, कर्मो का क्षय होवे, रत्नत्रय का लाभ होवे, सुगति मे गमन होवे, सम्यक्दर्शन होवे, समाधि-मरण होवे, और जिनेन्द्रके गुणों की सप्राप्ति होवे।

इस प्रकार देववंदना में पहला कृमिकर्म हुवा॥

क्रिया—इसके अनन्तर पचगुरुभक्ति का कृत्य विज्ञापना का पाठ बैठकर पढ़ना

पंचगुरु भक्ति कृत्य-विज्ञापना:—

अथ पौर्वाह्णिक (माध्याह्निक-आपराह्णिक-) देव-वन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तव समेतं पञ्चमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं कुर्वे ।

अर्थात्—पूर्वदिनसम्बन्धी (मध्यदिन सम्बन्धी-अपरदिन सम्बन्धी देववन्दना मे अब पूर्वाचार्योंके क्रमानुसार सकलकर्मोंके क्षयनिमित्त मै भाव पूजा, वन्दना और स्तव समेत पचगुरुभक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ ।

क्रिया—फिर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठों को (देखो पृष्ठ ६ से १३ पर) विधि सहित पढना ।

फिर आगे पचगुरुभक्ति सग्रह के पाठो मे से कोई एक पाठ पढना ।

पंचगुरु भक्ति-संग्रह:

१—पंच-गुरु-भक्ति प्राकृत:—

मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्त-त्तया
पंच कल्लाण-सोक्खावली-पत्तया ।
दसणं णाण-झाणं अणंतं बलं
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं १

जेहिं झाण-ऽग्गि-बाणेहिं अइ-थड्ढयं
जम्म-जर-मरण णयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं शिवं सासयं ठाणयं
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं २
पंचहाऽऽचार-पंचग्गिसंसाहया
बारसंगाइं-सुय-जलहि-ओगाहया ।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया ३
घोर-संसार-भीमा-ऽडवी-काणणे
तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे ।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पह-देसया
वंदिमो ते उवज्झाए अम्हे सया ४
उग्ग-तवयरण-करणेहिं खीणंगया
धम्म वरझाण-सुक्केक्कझाणं गया ।
णिब्भरं तव-सिरीए समालिंगिया
साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया ५
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए
गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धि-सोक्खाइं वर-माणणं
कुणइ कम्मिंधणं-पुंज-पज्जालणं ६

अरुहा-सिद्धाऽऽयरिया उवज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ए पंच णमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु ७ ॥इति॥

१—मनुष्य नागेन्द्र और देवोंने जिनके ऊपर तीनछत्र धारण किये हैं, जो पच कल्याणक सुखो को प्राप्त हुए हैं और अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान ध्यान और अनन्तबल को-इस प्रकार अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हुए हैं ऐसे वे श्री जिनेन्द्रदेव हमें मंगल (पापहानि) प्रदान करे।

२—जिन्होंने ध्यानरूपी अग्निबाणके द्वारा अत्यन्त स्तब्ध-(दृढ़) जन्म जरा और मरणरूपी तीन नगरो को जलाडाला और शाश्वत स्थान शिवको पालिया वे श्रीसिद्ध हमे उत्तम ज्ञान प्रदान करें।

३—जो पंच प्रकार का आचार रूपी पचाग्निके साधने वाले हैं, द्वादशअग-श्रुतरूपी सागर मे अवगाहन करने वाले हैं, चारित्रादि गुणों से 'महत' हैं ऐहिकभोगों की आशाओं से रहित सौख्यको = संतोषको प्राप्त हुए हैं वे श्री आचार्य मुझे मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करे।

४—जिसे पाप रूपी पंचानन (सिंह) अपने तीखे विकराल (कषायों रूपी) नखों से आक्रान्त किये हुए हैं ऐसी घोर ससार रूपी भीम बनी मे भटकते हुए एवं अपने हितका मार्ग भूले हुए जीवों को जो मोक्षमार्ग बतलाने वाले हैं उन श्री उपाध्यायो को हम सदा वंदते हैं।

५—जो उग्रतपश्चरण करने से क्षीण-अग होगये है, प्रशस्त धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान को प्राप्तहुए हैं, तपोलक्ष्मी से अति-

शयपने आलिंगित = विभूषित हैं, वे श्रीसाधु हमे मोक्ष पथ को सुझाने वाले हो।

६—जो इस स्तोत्रके द्वारा पचगुरूओंको वदता है, वह भव्यजीवन गुरू-अनन्त ससारकी घनी बेडी = बधनको या बेल्लि = लता को अर्थात् मिथ्यात्व को छेदता है और अनेक सिद्धियों के सुखोंको तथा उत्तम पुरुषो से सम्मानको प्राप्त करके कर्मरूपी इधन के पुंज को भस्म करदेता है।

७—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्या और साधु ये पचपरमेष्ठी, और इन पाँचो के नमस्कार मुझे भवभव मे सुख देवे।

२—नमस्कार-निर्वचन

राय दोस कसाए य इंदियाणि य पंच य।
उवसग्गे परिसहे णासयंतो णमो ऽरिहा १

अरिहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चंते २

अरहंत-णमोक्कारं भावेण य जो करदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ३

दीहकालं अयं जंतू उसिदो अट्ठकम्महिं।
सिदे धत्ते णिधत्ते य सिद्धत्तं उवगच्छइ ४

आवेसणी सरीरे इंदियभंडो मणो व आगरिओ।
धमिदव्व जीवलोहे बावीसपरिसह-ऽग्गीहिं ५

सिद्धाण णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ६
सदा आयार-विद्दण्हू सदा आयरियं चरे ।
आयारमायारयंतो आयरिओ तेण उच्चदे ७
जम्हा पंचविहाचारं आचरंतो पभासदि ।
आयरियाणि देसंतो आयरिओ तेण उच्चदे ८
आयरियणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ९
बारसंगं जिण-ऽक्खादं सज्झाओ कहिओ बुधे ।
उवदेसइ सज्झायं तेणुवज्झाउ उच्चदे १०
उवज्झाय-णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ११
णिव्वाण-साधए जोगे सदा जुंजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो १२
साहूण णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण १३
एवं गुणजुत्ताणं पंच गुरूणं विसुद्धकरणेहिं
जो कुणदि णमोक्कारं सो पावदि णिव्वुदिं सोक्खं १४
एसो पंच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलेसु य सव्वेसु पढमं हवइ मंगलं १५

★इति पञ्च परमेष्ठि नाम निर्वचनपराणि नमस्कार निर्युक्ति-प्रकरणगतगाथासूत्राणि आचारशास्त्रादुद्धृतानि ॥★

१—जो भव्य लोको के राग द्वेष और कषायभाव को पचे द्रियों को उपसर्गों और परीषहोंको इन शत्रुओंको नाशने वाले हैं इसलिये 'अरिहा'—अरिहत सार्थक कहलाये हैं उन्हे नमस्कार होवे ।

२—जो विश्वके नमस्कारको पाने योग्य हैं, जो 'अर्ह' पूजित है, 'पूज्य' पूजा के योग्य है लोक मे 'सुरोत्तम' देवाधिदेव हैं 'रजोहृत' आवरण द्वय कर्मोंके नाशक है 'अरिहृत' मोहनीय और अन्तराय कर्मरूपी शत्रुके नाशक है इसकारण सार्थक 'अरिहृत' कहेजाते है (उन्हे नमस्यार हो) ।

३—जो भव्य प्रयतमति होकर-संतत प्रयत्नशील होकर भाव पूर्वक अर्हन्तोको (६ ठी गाथा मे सिद्धोको, ६ वी गाथा मे आचार्योंको, ११ वी गाथा मे उपाध्यायाको, १३ वी गाथा मे साधुवोंको समझना) नमस्कार करता है वह शीघ्रही सारे दुक्खों से मुक्ति पाता है ।

४—यह जीव अनादि कालसे आठ कर्मो के बधन से बंधाहुवा है सो कर्मबन्ध के (परप्रकृति का सक्रमण, उदय, उदीरण, उत्कर्षण, अपकर्षण आदि अवस्था रहित होकर) सर्वथा नाशहो जाने पर 'सिद्धत्व' को प्राप्तहोता है (उन सिद्धो को नमस्कार हो) ।

५—इस ज्ञानी मनको [आकरी] चतुर धातुशोधक बनकर, (मानव) शरीर को [आवेशनी] चूल्हा बनाकर [इद्रिय] को

इंद्रिय विजयको संडासी अहेरण हथोडा घन सुहागा आदि बना-कर उसकी सहायता से बावीस परीसह (—जय) रूप तपकी अग्निकी अति तेज आचसे [जीवलोह] कर्ममलमिश्रित आत्मा रूपी सुवर्ण को फू कफाडकर निर्मल करना चाहिये

भाव यह है कि ऐसा करने से जीव केवलज्ञान को पाकर पश्चात् शरीर और इंद्रियो के सबंधको छोडकर शुद्ध जीवत्व रूप मोक्ष पदको प्राप्त होता है ।

७—जो सदा गणधर कथित आचार धर्मको जानने वाले है तथा उस आचार को सदा स्वय पालते और दूसरो से पल-वाते हैं इसलिये वे सार्थक 'आचार्य' कहेजाते हैं ।

८—जो पचप्रकार के आचार को आचरण करते हुए सोहते हैं तथा उत्तम आचरण का आदर्श मार्ग लोकों को दर्शाते हुए सोहते है इसलिये आचार्य कहलाते है । (उनको नमस्कार हो)

१०—ज्ञानीजनोंने जिनेंद्र प्रणीत द्वादशाङ्ग को 'स्वाध्याय' कहा है । जो उस स्वाध्याय को उपदेशते है--पढते पढाते हैं वे सार्थक 'उपाध्याय' कहलाते हैं । (उनको नमस्कार हो)

१२—जो (मूलगुणपालन, विविधतपों का अनुष्ठान आदि रूप) मोक्षके साधक योगो मे सदा काल आत्मा को जोडते हैं सारे जीवो मे समता भाव-राग द्वेषका त्यागभाव धारते हैं अतः सर्व साधु कहलाते है । (उनको नमस्कार हो)

१४—जो इन गुणो से विशिष्ट पचगुरुओ का विशुद्ध करणो से—शुद्ध मनवचनकाय के व्यापार द्वारा नमस्कार करता है वह निर्वृति-परमशान्ति सुखको शीघ्र प्राप्तकरता है ।

१५—यह पचनमस्कार मंत्र सबपापो का नाशकरने वाला है और सारे मंगलो में प्रधान मगल है ।

३—'वे हैं परम उपास्य'—मङ्गलगीत

यह गीत सारग भैरवी धाणी आदि विविध रागों में बोला जा सकता है।

वे हैं परम उपास्य मोह जिन जीतलिया।
हम हैं उनके दास मोह जिन जीतलिया। ध्रुवक। (टेर)

काम, क्रोध, मद, लोभ पछाड़े सुभट महा बलवान।
माया कुटिल नीति-नागिन हनि किया आत्म संत्राण १
ज्ञान ज्योति से मिथ्या-तमका जिनके हुआ विलोप।
रागद्वेष का मिटा उपद्रव रहा न भय और शोक २
इन्द्रिय-विषय-लालसा जिनकी रही न कुछ अवशेष।
तृष्णा—नदी सुखादी मारी धरि असंग-व्रत-वेष ३
दुख उद्विग्न करें नहीं जिनको सुख न लुभावें चित्त।
आत्म-रूप-संतुष्ट गिनें सम निर्धन और सवित्त ४
निन्दा स्तुति सम लखै बने जो निष्प्रमाद निष्पाप।
साम्य-भाव-रस-आस्वादन से मिटा हृदय सन्ताप ५
अहंकार-ममकार-चक्र से निकले जो धरि धीर।
निर्विकार निर्वैर हुए पी विश्व-प्रेम का नीर ६
साध आत्म-हित जिन वीरों ने किया विश्व कल्याण।
"युग मुमुक्षु" उनको नित ध्यावै छोडि सकल अभिमान ७

—"युगवीर"

इति पञ्चगुरुभक्तिसंग्रहः ।

पंचगुरु–भक्तिआलोचना दंडकपाठ

क्रिया—बैठे आसन से शुक्ति मुद्रा से पढ़ा जावे।

इच्छामि भंते! पंच-महागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण माउ-संजुत्ताणं आयरियाणं, आयारा-ऽऽदि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्ख-क्खओ, कम्म-क्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, सम्मं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं॥

इति देव वन्दनाया द्वितीय कृतिकर्म ॥२॥

हे भंते! हे गुरुदेव! मैंने पंचमहागुरुभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। आठ महा प्रातिहार्य रूप विभूति से भूषित अरहंतो का, आठ गुणों को प्राप्त तथा ऊर्ध्वलोकके शिखर पर प्रतिष्ठित सिद्धों का, अष्ट प्रवचनमातृका से सयुक्त आचार्यों का, आचाराग आदि द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायों का और सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयके पालने में तत्पर सर्वसाधुओं का मैं अर्चन-पूजन, वंदन और नमस्कार करता हूँ।

भाव से की गई पंचमहागुरुभक्ति के द्वारा उपार्जित सुकृत के प्रसादसे मेरे दुःखोंका क्षय होवे, कर्मो का क्षय होवे,

रत्नत्रय धर्म का लाभ होवे, सुगतिमें गमन होवे, सम्यग्दर्शन होवे, समाधिमरण होवे, और जिनेन्द्र के गुणों की संप्राप्ति होवे।

इस प्रकार देववन्दना में दूसरा कृतिकर्म हुआ ॥२॥

समाधि भक्ति की कृत्य विज्ञापना

क्रिया—बैठकर ५ पाठों में से कोई एक पढना।

अथ पौर्वाह्निक देववन्दनायां श्रीचैत्यभक्ति-पञ्चगुरुभक्ती कृत्वा तद्धीनत्वाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं कुर्वे।

अब पूर्वाह्निकसंबंधी देववन्दना क्रिया में श्री चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति को करके उसके हीनत्व अधिकत्व आदि दोषों की विशुद्धि के लिये और आत्मा के पवित्रीकरण के लिये समाधिभक्तिका कायोत्सर्ग करता हूं।

क्रिया—खडे होकर णमोकारमंत्रका ९ बार जाप देना

समाधिभक्तिसंग्रह

व्युत्सृज्य दोषान्निःशेषान् सद्ध्यानी स्यात्तनूत्सृतौ।
सहेताप्युपसर्गोर्मीन् कर्मैवं भिद्यते तराम् १

ध्यानाशुशुक्षणाविद्धे मनश्चत्विक्समाहिताः।
स्वकर्मसमिधो भावसर्पिषा जुहुमोऽशुभा २

अह-मेवाहमित्यात्मज्ञानादन्यत्र चेतना ।
इदमस्मि करोमीदमिदं भज इति त्वये ३
अहमैवाहमित्यन्तर्जल्पसंपृक्तकल्पनाम् ।
त्यक्त्वाऽवाग्गोचरं ज्योतिः स्वयं पश्यामि शाश्वतम् ४
अमुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं च य स्वयम् ।
शुद्धे निधत्ते स्वं शुद्धमुपयोगं स सिध्यति ५
बोधिसमाधिविशुद्धिस्वचिद्रूपलब्ध्युच्छलत्प्रमोदभराः ।
ब्रह्म विदंति परं ये ते सद्गुरवो मम प्रसीदन्तु ६

१—जो कायोत्सर्ग मे सारे बत्तीसदोषों को त्यागकर ध्यानी होता है और उपसर्गो और परीषहोको भी सहन करता है तो इसप्रकार उसके कर्म अतिशय नष्ट होते हैं ।

२—हम चित्तारूपी ऋत्विज (यजमान) के द्वारा सावधान हुए शुद्ध परिणामों रूपी घृत से प्रदीप्त हुई ध्यानरूपी अग्नि में अपने कर्मरूपी इधनों को होमते हैं जलाते हैं ।

३—'मै मैं ही हूं' यह ज्ञान आत्मज्ञान है । इसके सिवाय 'मै यह हूं, मैं यह करता हूं, मै यह पाता हूं' यह परबुद्धि है । ध्यान मे ऐसी परबुद्धि के नाश हो जाने पर:—

४—'मै मै ही हू' यह अन्तर्जल्प (मानसिकजाप) मिश्रित कल्पना, वाणीगोचर ज्ञान है । जब इसका भी परित्याग करता हूँ तो मै तदनन्तर वचनों से अनिर्वचनीय शाश्वत आत्मज्योति का मैं स्वय देखता हूँ ।

५—जो भव्य मोह राग और द्वेष से अपने को रहित करके—स्वयं अमोही अरागी और अद्वेषी बनकर शुद्धस्वरूप में अपने शुद्ध उपयोग को लीन करता है वह सिद्धि को पाता है।

६—रत्नत्रय की प्राप्ति, आत्मध्यानकी विशुद्धिका लाभ, तथा आत्म-साक्षात्कार की उपलब्धि से अतीव आनन्दयुक्त होते हुए जो परब्रह्मको जानते-अनुभव करते हैं वे सद्गुरु मुझपर प्रसन्न होवें।

अथेष्ट प्रार्थना:—

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेते ऽपवर्गः १

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः २

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेवय मज्झ वि दुक्ख क्खयं देउ ३

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ जगतबंधव! तव जिणवर चरणसरणेण ४

प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानु-योग रूप श्रुतज्ञानको नमस्कार हो ।

१—जब तक मुझे अपवर्ग की प्राप्ति होना शेष है तब तक जिनागम शास्त्रों का अभ्यास हो, जिनेन्द्र की स्तुति-वन्दना मिले, सदा श्रेष्ठ सदाचारी पुरुषोंकी सगति मिले । मैं सदाचारी जनों के गुणोंकी कथा करूँ, किसीके दोष बोलनेमें मौनप्रकृति होऊ, सबके प्रति प्रिय और हितकर वचन बोलूँ, और आत्म-तत्त्व मे भावना होवे-मुझे भव भव मे यह समागम मिले ।

२—हे जिनदेव ! आपके चरणयुगल मेरे चित्तमें और मेरा चित्त आपके चरणयुगलमे लीन रहे अहर्निश ध्यानयुक्त होकर लगा रहे ।

३—मैने जो अक्षर पद अर्थ और मात्रा से हीन कहा हो उसे हे ज्ञानदेव ! क्षमा करो और मुझे दुःखक्षय देवो ।

४—दुक्खों का क्षय, कर्मों का क्षय, रत्नत्रयका लाभ, सुगति मे गमन, सम्यग्दर्शन, समाधिमरण, जिनेन्द्रके गुणो की सम्प्राप्ति मुझे होवे ।

संग्रह गाथा (आचार शास्त्रात्)

जा गदी अरहंताणं णिट्ठिदट्ठाण जा गदी ।
जा गदी वीदमोहाणं सा मे भवदु सस्सदा १
सव्वमिणं उवदेसं जिणदिट्ठं सद्दहामि तिविहेण ।
तस-थावर-खेमकरं सारं णिव्वाण मग्गस्स २

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं ।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ३
णाणं सरणं मे दंसणं च सरणं च चरिय सरणं च ।
तवसंजमं च सरणं भयवं सरणं महावीरो ४
जं अल्लीणा जीवा तरंति संसारसायरं घोरं
तं भुवनजणहिदकरं णंदउ जिणसासणं सुइरं ५

१—जो गति अरहतो की है जो गति कृतकृत्यपुरुषो—सिद्धो की है जो गति वीतरागमुनियो की है यह ही शाश्वती गति मेरी होवे ।

२—यह सारा जिनेन्द्र कथित उपदेश त्रस-स्थावर प्राणिमात्रका कल्याण कारी है निर्वाणमार्ग का सारभूत है इसे मैं मन वचन कायसे श्रद्धानकरता हूँ ।

३—यह जिनवाणी जरामरण रूप व्याधि को हरने वाली, सब दु:खोको क्षयकरने वाली, और विषयसुखो की चाह को मिटानेवाली अमृत रूप औषध है ।

४—मेरे सम्यग्ज्ञान शरण भूत है सम्यग्दर्शन शरण है । सम्यग्चारित्र शरण है सम्यग्तप और जीवदयारूप संयम शरण है भगवान महावीर प्रभु शरण है ।

५—जिसका आश्रय करके ये जीव घोर दु:खप्रद संसार सागर को पारकरते है वह विश्वकी जनता का हितकारक जिनेन्द्रका शासन अहिंसा धर्म चिरकाल तक फलो फूलो बढता रहे ॥

॥ इति ॥

गीत—

राग—जौनपुरी

दयामय ! ऐसी मति होजाय ।
त्रिभुवनकी कल्याणकामना दिन दिन बढ़ती जाय ।टेर।
औरोंके सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय
अपने दुख सब सहूँ किन्तु पर दुख नही देखा जाय १
अधम-अज्ञ-अस्पृश्य-अधर्मी दुखी और असहाय—
सबके अवगाहन हित मम उर सुर-सरि-सम बनजाय २
भूला भटका उलटीमतिका जो है जन-समुदाय
उसे सुझावें सच्चा सत्पथ निज सर्वस्व लगाय ३
सत्य धर्म हो सत्य कर्म हो सत्य ध्येय बनजाय
सत्यान्वेषणमे ही "प्रेमी" जीवन यह लगजाय ४

—पं० नाथूराम प्रेमी

मेरी भावना

इस प्रसिद्ध रचना का पाठ भी किया जा सकता है—

इति समाधिभक्ति पाठ संग्रहः

समाधिभक्ति आलोचना दण्डक पाठ

इच्छामि भंते समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तय-सरूव-परमप्प-ज्झाणलक्खणं समाहिं भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

हे भंते हे गुरुदेव मैंने समाधिभक्ति संबधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। मैं समाधिको जो निश्चय रत्नत्रय स्वरूप परमात्म तत्त्व का ध्यान लक्षण वाला है सदा-काल अर्चता, पूजता, वंदता और नमता हूँ।

भावसे की गई समाधिभक्ति केद्वारा उपार्जित सुकृतके प्रसाद से मेरे दुःखोका क्षयहोवे, कर्मो का क्षय होवे, रत्नत्रय का लाभ होवे, सुगति मे गमन होवे, सम्यग्दर्शन होवे, समाधि मरण होवे, और जिनेन्द्रके गुणो की सम्प्राप्ति होवे ॥

क्रिया—देवालय से निकलते समय प्रभुजीको नमस्कार करके ९ जापदेकर ये शब्द पढना।

आसही ! आसही !! आसही !!!

अर्थ—हे भगवन ! यह देव वन्दना मैंने सब सासरिक आशाओ को त्यागकर की है।

इति वन्दना नाम तृतीयं आवश्यकं कर्म—

अथ श्रावक-प्रतिक्रमणपाठसंग्रहः

प्रतिक्रमण पीठिका

क्रिया—शुक्तिमुद्रा से बैठकर पढना

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥१॥

खम्मामि सव्वजीवेऽहं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि ॥२॥

रागबंध पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥३॥

हा दुट्ठु कयं हा दुट्ठु चिंतियं भासियं च हा दुट्ठु ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥४॥

एइंदिया-बीइंदिया तीइंदिया-चउरिंदिया-पंचेदिया-पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया-वणप्फदिकाइया-तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

बारह वदेसु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अरहंतसिद्धआइरियउवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्त-पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समाराहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु।

इति प्रतिक्रमण पीठिका

१—हे तीनो लोकोंके नाथ ! जिनेन्द्रदेव ! मैं पापी हूं, मैं दुरात्मा हूँ, मै जडमति हू, मै मायावी तथा लोभी हूँ। मैंने राग-द्वेषसे मलिन मन होकर जो भी दुष्टचिन्तन, दुष्टभाषण और दुष्ट व्यापार रूप दुष्कर्म किये है उनको आपके श्रीपादमूलमे अपनी निंदा करता हुवा त्यागता हूँ और निरन्तर सन्मार्गमे वरतना चाहता हूँ।

२—मै सारे जीवों को क्षमा करता हूँ। सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करे। सारे प्राणियो मे मेरे मित्रभाव है किसी के साथ वैर नहीं है।

३—मैं इष्ट मे राग बधको, अनिष्टमे द्वेषको, हर्षको, दीनता को और उत्सुकता को भय और शोक को, रति और अरति को वोसराता हू—त्यागता हूं।

४—हे भगवन ! हाय ! मैंने शरीरसे दुष्टु (बुरा) किया है हाय ! मनसे दुष्टु विचारा है हाय ! वाणीसे दुष्टु भाषण किया है। सो मैं अब पश्चात्ताप के द्वारा वेदनाकरता हुवा (वेपतो वपमानः—कापता हुवा) मनहीमन जल रहा हूँ।

एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय तीनइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा पृथ्वीकायिक जलकायिक तेजकायिक वायुकायिक वनस्पति कायिक और त्रसकायिक ये जीवराशि है।

इन जीवो का उत्तापन (हैरान करना) परितापन (धूप से तपाना) विराधन = प्राणपीड़न और उपघात किया हो वा कराया हो वा करते को भला माना हो तो उसका मेरे मिच्छा दुक्कड़ होवे-पाप मिथ्या होवे।

बारह व्रतो मे प्रमाद आदि के निमित्त से किये गये अति-चार दोषों की शुद्धि के निमित्त मेरे छेदोपस्थापना होवे। अरहंत सिद्ध-आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु इन पाचो परमेष्ठियोकी, साक्षीपूर्वक सम्यग्दर्शन पूर्वक मेरे सुव्रत और दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे ॥३॥

अथ कृत्यविज्ञापना

अथ देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण आलोयणसिरिसिद्धभत्ति—काउस्सग्गं करेमि।

क्रिया—भूमि स्पर्शनात्मकनमस्कार करे।

तदनन्तर शुक्तिमुद्रा से खड़े होकर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठो को (पृ० ६ से १३ तक) पढना

अथ सिद्धभक्तिपाठ

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठम-पुढवि-णिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं १

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयास-णिव्वुदे सिद्धे ।
अंतयडेदरसिद्धे उक्कस्स-जहण्ण-मज्झिमोगाहे २
उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे ।
उवसग्गि-णिरुवसग्गे दीवोदहि-णिव्वुदे य वंदामि ३
पच्छायडे य सिद्धे दुग-तिग-चदु-णाणपंच-चदुर-जमे ।
पडिवाडिदा-ऽपरिवडिदे संजमसम्मत्तणाणमादीहिं ४
साहरणा-ऽसाहरणे सम्मुघादेदरे य णिव्वादे ।
ठिदपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वंदे ५
पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
ससोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ६
पत्तेय-सयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा ।
पत्तेयं पत्तेयं समये समय च पणिवदामि सदा ७
पणणवदु-अट्ठवीसा-चउतेणवदी य दोण्णि पंचेव ।
बावण्ण-हीण-वियसय-पयडि-विणासेण होंति ते सिद्धा ८
अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंतं अणोवमं परमं ।
इंदियविसयातीदं अप्पत्थं अच्चुअं च ते पत्ता ९
लोयग्ग-मत्थयत्था चरमसरीरेण ते दु किंचूणा ।
गयसित्थ-मूसगब्भे जारिसु आयारु तारिसायारा १०
जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्ति-जुत्तस्स ।
दिंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ११

१—जो अष्ट प्रकारके कर्मोंसे रहित हैं, अष्ट गुणों से युक्त है, अनुपम है, अष्टमी पृथ्वी पर विराजते हैं, कृतकृत्य है, उन सिद्धोंको हम नित्य वदते है।

२—जो तीर्थंकर पदको पाकर या बिना तीर्थंकर हुए, सिद्ध हुए, जल में, स्थलसे या आकाश से सिद्ध हुए, अंतकृत केवली होकर या अतकृत हुए बिना सिद्ध हुए—उत्कृष्टजघन्य या मध्यम शरीरकी अवगाहना पाकर उससे सिद्ध हुए।

३—ऊर्ध्व लोकसे अधोलोकसे या तिर्यग्लोकसे सिद्ध हुए सुषमसुषमा से लेकर दुष्षमदुष्षमा तक छह प्रकार के काल मे किसी समय सिद्ध हुए, उपसर्गों को सहन करके या बिना सहे सिद्ध हुए या द्वीपसे सागरसे सिद्ध हुए उनको मै वंदता हूँ।

४—जो एक केवलज्ञानसे तथा पूर्व अवस्था मे कितने ही दो ज्ञानों को तीन ज्ञानोको और चार ज्ञानोको पाकर सिद्ध हुए या पाचो सयमोको या चारो सयमोंको पाकर सिद्ध हुए कितने ही संयम से, सम्यक्त्वसे, ज्ञान, ध्यान आदि से परिपतित (स्थानभ्रष्ट) होकर या नही होकर सिद्ध हुए।

५—कितने ही वैरी आदि के द्वारा संहरण से या असहरण से, समुद्घात अथवा बिना समुद्घात किये, कितने ही कायोत्सर्गासन से या पल्यकासनसे बैठे हुए विगतमल-सिद्ध हुए उन परमज्ञायक पुरुषों को मै वदता हूँ।

६—जो कितने ही भावो मे पु वेद के उदय को अनुभवते हुए क्षपक श्रेणि पर चढकर-ध्यानस्थ होकर तथा कितने ही भावों मे उसीतरह स्त्रीवेदके और नपु सकवेद के उदय को भी अनुभवते हुए सिद्ध हुए।

७—जो किसी एक कारण को पाकर वैराग्य लिया वे प्रत्येकबुद्ध जो बिना कारण के विराग हुए वे स्वयंबुद्ध और जो उपदेश पाकर विराग हुए व बोधितबुद्ध कहलाते है सो वे होकर सिद्धपद को प्राप्तहुए, उन प्रत्येक को पृथक २ समय मे और एक साथ सदा प्रणामकरता हूँ।

८—पांच, नौ, दो, अट्ठावीस, चार, तिराणवे, दो और पांच इसप्रकार बावनकम दो सौ (१४८) कर्म प्रकृतियों के विनाश से वे पूर्वोक्त सभी सिद्ध हुए हैं।

९—वे सर्वातिशायि, अबाध, अनन्त, अनुपम, उत्कृष्ट, इंद्रियोंके अगोचर, आत्मोत्थ (आत्मीय) और अच्युत (अविनाशी) सौख्यको प्राप्तहुए है।

१०—वे सिद्ध लोकाग्रके मस्तकपर स्थित हैं अंतिममानव-देह से कुछ कम प्रदेश वाले है मैणरहित मूसाके गर्भ मे जैसा आकार होता है वैसे नराकार वाले हैं।

११—जरा, मरण और जन्मरहित वे सिद्ध परमेष्ठी मुझ परमभक्तिसयुक्त को ज्ञानीजनोंके (परम इष्टहोने से) प्रार्थनीय परमशुद्ध ऐसे उत्तमज्ञानलाभको प्रदानकरें।

लघु सिद्ध भक्ति पाठ

तव सिद्धे णय सिद्धे संजमसिद्धे चरित्त सिद्धे य।
णाणम्मि दसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

अर्थात् तप, नय, सजम, चारित्र और ज्ञान दर्शन आदि के द्वारा जो सिद्ध हुए उन परमात्मा को मै शिर से नमस्कार करता हूँ।

सिद्धभक्ति–आलोचना दण्डक पाठ

क्रिया—पर्य का सनसे बैठकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से पढना।

इच्छामि भंते। सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइ-ट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तसिद्धाणं अतीदाणागदवट्टमाण-का-लत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैंने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त हैं, अष्टविधकर्मों से मुक्त है, अष्टगुण संपन्न हैं ऊर्ध्वलोक के शिखरपर प्रतिष्ठित हैं, तपसिद्ध-नयसिद्ध सयम सिद्ध हैं, सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यकचारित्रसे सिद्ध है, और भूत भविष्यत् वर्तमान रूप तीन कालों से सिद्ध हैं, ऐसे सर्व सिद्धों को मैं अर्चना पूजता वंदता और नमता हूँ

भावपूर्वक की गई सिद्धभक्ति के प्रसाद से मेरे दुःखोका क्षय होवे, कर्मोंका क्षय होवे, रत्नत्रयका लाभ होवे, सुगति मे गमन होवे, सम्यग्दर्शन होवे. समाधिपूर्वक मरण होवे, और जिनेद्रके गुणों की सम्प्राप्ति होवे ॥

॥ इति ॥

आलोचना

आलोचना गाथा सूत्राणि (आचारशास्त्रात्)

क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से पढ़ना—

इच्छामि भंते ! देवसियम्मि (राइयम्मि) आलोचेउं—
इह-परलोय-ऽत्ताणं-अगुत्ति-मरणं च वेयणा-ऽऽकम्हि-भया
विएणाणिस्सरिया-ऽऽणा-कुल-बल-तव-रूप-जाइ मया १
पंचेव अत्थिकाया छजीवणिकाया महव्वया पंच
पवयणमाउ-पयत्था तेतीस-ऽच्चासणा भणिया २
सत्त भये अट्ठमए सएणा चत्तारि गारवे तिण्णि
तेतीस-ऽच्चासणाओ रागं दोसं च गरहामि ३
असंजमं अएणाणं मिच्छत्तं सव्वमेव य ममत्ति
जीवेसु अजीवेसु य तं णिंदे तं च गरहामि ४
मूलगुणे उत्तरगुणे जो मे णाराहिओ पमादेण
तमहं सव्वं णिंदे पडिक्कमे आगमिस्साणं ५
णिंदामि णिंदणिज्जं गरहामि य जं च मे गरहणिज्जं ।
आलोचेमि य सव्वं सब्भंतरबाहिरं उवहिं ६
एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो, तस्स भंते
पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं पंडिय मरणं
वीरियमरणं दुक्खखओ कम्मखओ बोहिलाहो सुगइ-
गमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

बारहवदेसु पमादाइ-कयाऽइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्वसाहु-सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वद समारोहियं मे हवदु मे हवदु मे हवदु।

इति श्रावक प्रतिक्रमणे प्रथमं कृतिकर्म १

१—भय सात है जैसे-ऐहलौकिकभय, पारलौकिकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिकभय। तथा विज्ञान, ऐश्वर्य, आज्ञा, कुल, बल, तप, रूप और जाति इन आठका मद करना सो आठ मद है।

२—अत्यासना का अर्थ जिनेन्द्रकी आज्ञाका श्रद्धान और पालन नहीं किया जाना है सो अत्यासना तेतीस है। पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमातृका, और नौ पदार्थ इन तेतीस का यथासंभव पालन और श्रद्धान नहीं करने रूप कही गई हैं।

३—मै सात भय, आठ मद, चार सज्ञाए, तीन गारव, तेतीस अत्यासना, तथा राग और द्वेष को गरहता हूँ।

४—जीव और अजीव विषयक सारे असयम को, अज्ञान को, मिथ्यात्व को और ममत्व परिणामो को मै निंदता हूं मैं गरहता हूँ।

५—मुनिधर्म और श्रावकधर्म सम्बन्धी मूलगुणो तथा उत्तरगुणों में से जो कोई मैने प्रमाद के वश होकर नही आराधन किया है, उन सबको मैं निंदता हूं और आगामीकाल मे तद्विषयक विराधना को मैं निंरता पडिकमाता हूं।

६—जो मेरा निंदनीय कृत्य है उसको निंदता हूँ तथा जो गर्हणीय कृत्य है उसको गरहता हूँ तथा अभ्यतर और बाह्य सब (चौबीस) परिग्रहो की मै आलोचना करता हूँ।

इन सब मे जो कोई मेरे दिन सम्बन्धी (रात्रि सम्बन्धी) अतिचार अनाचार हुए हों तो उसको हे भंते ! हे गुरुदेव ! मै पडिकमाता हूं कि सोधता हूँ।

भावपूर्वक प्रतिक्रमण की है उसके प्रसाद से मेरे दु खक्षय कर्मक्षय रत्नत्रय लाभ सुगति मे गमन सम्यग्दर्शन समाधिपूर्वक मरण, सम्यक्त्वपूर्वक मरण, पडितमरण, वीर्यमरण और जिनेन्द्र के गुणों की सप्राप्ति हो।

बारह व्रतोमे प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधु इन ५ परमेष्ठियों की साक्षी से मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढ-व्रत भलेप्रकार आराधित होवें ॥३॥

इस प्रकार श्रावय प्रतिक्रमणमे प्रथम कृतिकर्म हुआ ॥१॥

प्रतिक्रमण निषद्याभक्ति नाम द्वितीयं कृतिकर्म

क्रिया—बैठकर कृत्य विज्ञापना पाठ पढना

कृत्य विज्ञापना पाठ

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण पडिक्कमणणिसिहीभत्ति-काउस्सग्गं करेमि

अब मै दिवससंबधी प्रतिक्रमण मे सारे दोषोकी विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यो के अनुक्रमसे प्रतिक्रमणनिषद्याभक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना। फिर खडे होकर सामायिक पाठके अतर्गत १ से ७ पाठोको (पृष्ठ ६ से १२ पर देखो) विधि सहित पढना।

लघु 'णमो णिसिहीए' दंडक पाठ—

+णमो जिणाणं-३, णमो णिसिहीए-३, णमोऽथु दे-३, × अरहंते सिद्धे बुद्धे [-आरए वीरए] णीरए णिम्मले

णमो णिसिहीए—पाठ की विशेष सूचना

+ इस चिन्ह वाला पाठ बृहत्पाठ मे नहीं है।

[ ] ऐसे कंस चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ प्रचलित प्रतियों में नहीं मिलता। (आगे देखिये)

[-णिप्पंके] ०णिग्भवे णिक्कम्मे णीरागे णिद्दोसे णिम्मोहे ०सुमणसे ०सुसमणे ०सुमंतमणे समजोगे समभावे णिस्संगे णिस्सल्ले ०मणमूरणे तवप्पभावणे गुणरयणे सीलसायरे अणंतजिणे अप्पमेये महदि-महावीर-वड्ढमाण बुद्धि रिसिणो [-केवलणाणिणो] चेदि णमोऽत्थु दे--३ ॥

मम मंगल अरिहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो य, [-आभिणिबोहियणाणी य, सुदणाणी य] ओहिणाणी य, मणपज्जयणाणी य, [-जे के वि जीवलोए] चउदस-पुव्वंगविदू, सुदसमिदिसमिद्धा य, खंतिखवगाय, खीण मोहा य, तवो य, बारसविहो तवस्सी य, गुणा य गुण-गहंता य महारिसी, तित्थं च तित्थंकरा य सव्वे, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसण दंसणी य (*१) संजमो संजदा य (*२) विणओ विणीदा य (*३) बंभचेरवासो बंभचारी य खंतीओ चेव खंतिमंता य

०णिब्भय ०णिम्मम -सममण ०सुभमण ०सुसमत्थ ०माणमाया-मोस मूरण। ऊपर वाले पदों के स्थान पर क्रमश ये पद प्रच-लित प्रतियों मे पाये जाते हैं तथा 'अरहंते' आदि द्वितीयाबहु वचनान्तपदों के स्थानपर 'अरहंत !' ऐसा संबोधन एकवचनान्त पाठ पाया जाता है।

(*१) ऐसे चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ बृहत्पाठ मे है जो इस पाठ मे नहीं लिया गया है और परिशिष्ट मे अंक देकर दिया गया है।

गुत्तीओ चेव गुत्तिमंता य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंता य, समिदीओ चेव समिदिमंता य, ससमय-परसमयविदू बोहियबुद्धा य बुद्धिमंता य, चेदियरुक्खा य चेदियाणि। (*४) सिद्धायदणाणि उड्ढ-अह-तिरियलोए (*५)+णमंसामि×सिद्धिणिसिहियाओ अट्ठावदपव्वदे (*६) सम्मेदे उज्जयंते (*७) चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियाए सहाए पव्भाए (*८) जाओ अण्णाओ काओ वि णिसिहियाओ अत्थि जीवलोयम्मि ईसप्पब्भारगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं (*९) णीरयाणं (*१०) णिम्मलाणं (*११) गुरुआइरिय उवज्झायाणं (*१२) पवत्ति-थेर-कुलयराणं चाउव्वण्ण सवणसंघस्स (*१३) भरहेरावदेसु दससु पंचसु महाविदेहवंसेसु जे के वि जीवलोए संति साहवो संजदा तवस्सी। एदे मम मंगलं पवित्तं एदे मम मंगलं करंतु [एदे मम मंगलं होतु]

●रत्तिंच दियहं च भावविसुद्धो सिरसा काऊण अंजलि मउलियहत्थे तिविहेण तियरणसुद्धो करेमि आवासय-

●इस चिन्ह का मध्यवर्तीपाठ प्रचलित प्रतियों में ऐसा है—

एदं हु मगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि पडिलेहिय अट्ठकत्तरिओ(ख) तिविह तियरणसुद्धो ॥

विसुद्धि पडिक्कमणादेसयाले सव्वदुक्खक्खय—करणट्ठदाए सिद्धे सिद्धिं गदिं गदे पणिवदामि ॥

इति णमो णिसिहीए–समाप्तं ।

नमस्कार होवे जिनेन्द्रों को, नमस्कार होवे निषद्या को—समाधिस्थान को, नमस्कार हो उनको जो अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, आरत—उपरत (परिग्रह रहित), विरत—पापनिवृत्त, नीरज, निर्मल, निष्पंक भवरहित, निष्कर्म, वीराग, निर्द्वेष, निर्मोह, सुमानम, सुश्रमण, सुशानमन, समयोग, समभाव निःसंग, निःशल्य, मनोविजयी, तपके तेजसे बढेहुए, गुणरत्न, शीलोंके सागर, अनंतजिन, अप्रमेय, महर्द्धियुक्त, महावीर, वर्द्धमान, बुद्धि-ऋद्धि के धारक ऋषि, केवलज्ञानी, इत्यादि है।

मेरे मंगलरूप होवे—कल्याणकारक होवे वे, जो अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवली, महा-मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-ज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी है।

मेरे मंगलरूप होवे वे, जो कोई भी जीवलोक मे चौदह पूर्वांगोंके ज्ञानी, श्रुत और समिति मे समृद्ध है, क्षांति से क्षपक हैं क्षीणमोह है। द्वादशविध तप और तपस्वी, गुण और गुणोंसे महत महर्षिगण, धर्म—तीर्थ और सब तीर्थ करदेव, प्रवचन और प्रवचन के ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञानी, दर्शन और सम्यग्दृष्टि, संयम और संयमी, विनय और उसके धारक, ब्रह्मचर्यवास और ब्रह्म-चारी, क्षमा और क्षमावान, गुप्ति और गुप्ति के धारक, मुक्ति और मुक्तिमान, समिति और समितिवाले, स्वसमय और पर-

समय के ज्ञाता, बोधितबुद्ध, बुद्धि ऋद्धि के धारक, चैत्य (जिन-बिम्ब) और चैत्यवृक्ष, ऊर्ध्व-अधो-तिर्यग्लोक मे जो कोई भी सिद्धायतन हैं ।

मैं नमस्कार करता हूँ उन सिद्धि निषधाओं को-निर्वाण क्षेत्रों को जो अष्टापदगिरिपर, सम्मेदाचलपर, ऊर्जयन्त गिरिपर, चंपानगरीमे (मदारगिरिपर) और मध्यमा पावानगरी के अंतर्गत हस्तिपालित (नरेश) की सभा के प्राग्भागमे तथा जो कोई और भी दूसरी निषद्याएं हैं, जो ईषत्प्राग्भार (अष्टमी पृथ्वी) को प्राप्त सिद्धों की, बुद्धों की, कर्मचक्ररहितों की, नीरजो और निर्मलों की, गुरु आचार्य और उपाध्यायो की, प्रवर्ति, स्थविर तथा कुलकरों की, चातुर्वण्य श्रमणसघकी, पांचभरतक्षेत्रो पाच ऐरावतक्षेत्रों में इसप्रकार दश मे और पाचमहाविदेहवर्षो मे जो कोई भी जीवलोक मे सयत-साधु-तपस्वी है ये मेरे पवित्र मंगलरूप हैं ये मेरे मगल-पापनाश करें ये मेरे मंगल-सुखरूप हो । मैरात और दिन भावविशुद्ध होकर तथा अजलिमुकुलित हाथों को करके त्रिविधरूप से मन वचन काय से तथा त्रिकरणशुद्ध—कृत-कारित अनुमोदनशुद्ध होकर आवश्यकविशुद्धि व प्रतिक्रमणके देश और काल मे सारे दु:खो का क्षय करने के निमित्त सिद्धि गति को प्राप्त हुए श्री सिद्धों को मै प्रणाम करता हूँ ॥

इस प्रकार णमो णिसिहीए—का अर्थ हुआ ।

प्रतिक्रमण पाटी दंडक पाठ

क्रिया—खड़े होकर शुक्ति मुद्रा से बोलना

इच्छामि भंते ! देवसियं पडिक्कमिउं ।

—हे भंते गुरुदेव मै दैवसिक दोषो का पडिक्कमण करना चाहता हूँ।

विशेष

पाठको को चाहिए कि 'जो मए देवसिओ' से लेकर 'तस्स मिच्छा मे दुक्कड' तक का पाठ सब पाटियों मे जोड़कर बोले वह पाठ इस प्रकार है—

जो मए देवसिओ अइयारो मणसा वचसा कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अर्थ—जो मैने दैवसिक-दिनसबधी अतिचार (देशभग) या अनाचार (सर्वभग) को मनमे, वचन मे और कायमे किया होवे या कराया होवे या करने को भला माना होवे तो उसका पाप मेरे मिथ्या होवे।

प्रतिक्रमण पाटी

पडिक्कमामि भंते ! (दंसणपडिमाए) सम्मदंसण दंसणायारो अट्ठविहो पण्णत्तो तं जहा—

'णिस्संकिय णिक्कंखिय-णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल पहावणा चेव ॥'

सो परिहाविदो संकाए वा, कंखाए वा, विदिगिंछाए वा, परपासंड-पसंसाए वा, पसंथुईए वा, जो मए देवसिओ (राइओ) ... तस्स मिच्छा मे दुक्कडं १

पडिक्कमामि भंते !

काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहा अणिण्हवणे ।
वंजण-अत्थ-तदुभये अट्ठविहो णाणमायारो ॥

परिहाविदो, तं जहा—अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, पद-हीणं वा, वंजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, अकाले सज्झाओ कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा परिहाविदो अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं वामेलिदं, अण्णहा दिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे थूलवदे हिंसाविर-दिवदे वहेण वा, बंधेणवा, छेदेण वा, अइभारारोपणेण वा, अण्णपाणणिरोहेण वा, जो मए देवसिओ०·······
·············मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए थूलवदे असच्च-विरदिवदे मिच्छोवदेसेण वा, रहो-अब्भक्खाणेण वा, कूडलेहकरणेण वा, णासावहारेण वा, सायारमंतभेदेण वा, जो मए देवसिओ०· ·········मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) तिदिए थूलवदे थेण-विरदिवदे थेणप्पओगेण वा, थेण-हरियाऽऽदाणेण वा,

विरुद्धरज्जा-ऽइक्कमेण वा, हीण-अहिय-माणुम्माणेण वा, पडिरूवय-ववहारेण वा, जो मए देवसिओ०.............. मिच्छा मे दुक्कडं ५

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) चउत्थे थूलवदे अबंभविरदिवदे परविवाहकरणेण वा, इत्तरिया-परिगहिदाऽपरिगहिदागमणेण वा, अणंगकीडणेण वा, कामतिव्वा-भिणिवेसेण वा, जो मए देवसिओ०.............. मिच्छा मे दुक्कडं ६

पडिक्कमामि भंते (वदपडिमाए) पंचमे थूलवदे परिग्गह-परिमाणवदे खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमेण वा, हिरण्णसु-वण्णाणं परिमाणाइक्कमेण वा, धणधण्णाणं परिमाणाइ-क्कमेण वा, दासीदासाणं परिमाणाइक्कमेण वा, कुप्पप-रिमाणाइक्कमेण वा, जो मए देवसिओ०......... मिच्छा मे दुक्कडं ७

पडिक्कमामि भंते (वदपडिमाए) छट्ठे अणुव्वदे राइभोयण-विरदिवदे चउव्विहो आहारो, तं जहा—असणं, पाणं, खाइयं, साइयं चेदि।।-रत्तीए सयं भुत्तो वा, अण्णे भुंजा-विदो वा, अण्णे भुंजिज्जंते वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ८

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे गुणव्वदे दिसिवदे उड्ढवइक्कमेण वा, अहोवइक्कमेण वा, तिरियवइक्कमेण वा, खेत्तवड्ढीए वा, सदिअंतराधाणेण वा, जो मए देवसिओ० ...... मिच्छा मे दुक्कडं ९

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए गुणव्वदे देसवदे आणयणेण वा, विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गलक्खेवेण वा, जो मए देवसिओ० ... ... मिच्छा मे दुक्कडं १०

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) तिदिये गुणव्वदे अणत्थदंडविरदिवदे कंदप्पेण वा, कुक्कुइदेण वा, मोक्खरियेण वा, असमिक्खिय–अहिकरणेण वा, भोगोवभोगाणत्थक्केण वा, जो मए देवसिओ० .... मिच्छा मे दुक्कडं ११

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) पढमे सिक्खावदे सामाइयवदे मणदुप्पणिधाणेण वा, वायदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदिअणुवट्ठाणेण वा, जो मए देवसिओ० ...... मिच्छा मे दुक्कडं १२

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) विदिए सिक्खावदे पोसहवदे अप्पडिवेक्खिय-अप्पमजिय-उस्सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खिय-अप्पमज्जिय-आदाणेण वा, अप्पडिवेक्खिय-

अप्पमज्जिय-संथारोवक्कमणेण वा, आवासयाणादरेण वा, सदिअणुवट्ठाणेण वा, जो मए देवसिओ०············ मिच्छा मे दुक्कडं १३

पडिक्कमामि भंते (वदपडिमाए) तिदिये सिक्खावदे भोगोपभोगपरिमाणवदे सचित्ताहारेण वा, सचित्तसंबंधाहारेण वा, सचित्तसम्मिस्साहारेण वा, अभिसवाहारेण वा दुप्पक्काहारेण वा, जो मए देवसिओ० ········मिच्छा मे दुक्कडं १४

पडिक्कमामि भंते ! (वदपडिमाए) चउत्थे सिक्खावदे अतिहिसंविभागवदे सचित्तणिक्खेवेण वा सचित्तपिहाणेण वा परव्ववदेसेण वा मच्छरिएण वा कालाइक्कमेण वा जो मए देवसिओ० ······मिच्छा मे दुक्कडं १५

पडिक्कमामि भंते ! सल्लेहणाणियमे जीविदासंसाए वा मरणासंसाए वा मित्ताणुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णियाणेण वा जो मए देवसिओ० · मिच्छा मे दुक्कडं १६

रागेण व दोसेण व जं मे अकदं हुयं पमादेण ।
जं मे किंचि वि भणियं तमहं सव्वं खमावेमि ॥१॥

खामेमि सव्वजीवेऽहं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणइ ॥२॥

इति प्रतिक्रमण पाटी

विशेष—शेषप्रतिमाओं की प्रतिक्रमणपाटी परिशिष्टमें देखें।

हिन्दी में प्रतिक्रमण पाटी

पडिक्कमामि भंते ! सम्यग्दर्शनके विषै—

'निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सित, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना'—यह आठ भेद आचार कह्या है सो त्यागा होवे। जैसे शंका (जिनवाणी में शंका) कीनी होवे, कांक्षा (परदर्शन की वांछा) कीनी होवे, विदिगिंछा (फलके प्रति संदेह करके) कीनी होवे परपाखंडी की प्रशंसा कीनी होवे परपाखंडी का परिचय कीना होवे।१।

ऐसा करते दैवसिक (—रात्रिक) अतिचार या अनाचार जो मैंने मनसे, वचनसे, कायासे, कीना होवे या कराया होवे या करते को भला माना होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कडं' होवे ॥

पडिक्कमामि भंते !

'कालका, विनयका, उपधानका, बहुमानका, अनिन्हव का, व्यंजनका, अर्थका तदुभयका'—यह आठ भेद सम्यग्ज्ञानके विषै आचार कह्या है सो त्यागा होवे। जैसे अक्षरहीन वा स्वरहीन वा पदहीन वा व्यजनहीन वा अर्थहीन वा ग्रथहीन पढाहोवे, अकालमे सज्झाय (स्वाध्याय) कीना होवे, कराया होवे, काल में नहीं किया होवे, विधिहीन किया होवे, खोट मिलादी होवे, अधिका मिलाया होवे, विपरीत मिलाया होवे, अन्यथा दिया (समझाया) होवे. अन्यथा जाना (समझा) होवे, आवश्यकांमें हीनता लाई होव, ऐसा करते जो दोष लागा होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होय।२।

पडिक्कमामि भंते ! पहला थूलव्रत हिंसाविरतिव्रतके विषै

वध (--रोष से गाढा घात) किया होवे, बध (--रोषसे गाढा बांधा) किया होवे, छेद (- कोई अवयव छेदन) किया होवे, अधिका भार लादा होवे, अन्न पाणीका निरोध किया होवे। ऐसा करते दैवसिक० ....उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे।३।

पडिक्कमामि भंते ! दूजा थूलव्रत असत्यविरतिव्रत के विषै

मिथ्योपदेश (झूठी सलाह) दिया होवे, रहो अभ्याख्यान (स्त्री मित्र आदि की गुप्त मार्मिक बातका) किया होवे, कूटलेखा (झूठे बही चोपड़े) किया होवे, न्यास (अमानत धरोहर) का हरण किया होवे, साकार मन्त्रभेद (एकान्त सभाषण का प्रकटी करण) किया होवे, ऐसा करते दैवसिक० उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे।४।

पडिक्कमामि भंते ! तीजा थूलव्रत अचौर्याणुव्रतके विषै

स्तेन प्रयोग (चोरको उपाय बतानेरूप) किया होवे, चौराहृतादान (चोरी का समझकर माल लेना) किया होवे, विरुद्ध-राज्यातिक्रम (चुंगी चुराने, निषिद्ध वस्तु लेजाने आदि रूप) किया होवे, हीनाधिक-मानोन्मान (हीन अधिक तोल ओल करने या गज बट्ट हीन अधिक मापके रखने रूप) किया होवे, प्रतिरूपक व्यवहार (नकली सिक्कोंका चलन या हीनमूल्य की वस्तु की मिलावट रूप) किया होवे। ऐसा करते दैवसिक० .... 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ५

पडिक्कमामि भंते ! चौथा थूलव्रत स्वदारसंतोषव्रत के विषै

परका विवाह कराया होवे, रखैल नारी से गमन किया होवे, बाजारू व्यभिचारिणी से गमन किया होवे, अनंग क्रीडन किया होवे, कामभोग तीव्र अभिलाषा से भोगे होवे। ऐसा करते दैवसिक......... ... उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे। ६

पडिक्कमामि भंते ! पांचवां थूलव्रत परिग्रहपरिमाणव्रतके विषै

खेत और घर का, रूपा और सोनाका, धन और धान्यका दासी और दासका· तथा कुप्य भाड का परिमाणवृद्धि किया होवे। ऐसा करते दैवसिक ' '' ' उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे। ७

पडिक्कमामि भंते ! छट्ठा अणुव्रत रात्रिभोजनत्यागके विषै

आहार चार प्रकार का है; जैसे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, सो आप रात्रिमे खाया होवे, औरोको खिलाया होवे, औरोंको खाते हुवोंको भला माना होवे तो उसका 'मिच्छा मे दुक्कडं' होवे। ८

पडिक्कमामि भंते ! पहला गुणव्रत दिग्व्रतके विषै

ऊपरकी सीमाका अतिक्रमण, या नीचेकी सीमाका अति क्रमण या, तिरछे क्षेत्रकी सीमाका अतिक्रमण किया होवे, क्षेत्र को बढाया होवे, क्षेत्रनियम की स्मृति को भुलाया होवे, ऐसा करते दैवसिक उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे । ६

पडिक्कमामि भंते ! दूजा गुणव्रत देसव्रत के विषै

क्षेत्रके बाहिर विषयमें आनयन (मंगाना) किया होवे, विनियोग (भेजना) किया होवे, शब्द का सकेत किया होवे, रूप का सकेत किया होवे, पुद्गल (बिजली या कोई चिन्ह) फैंका होवे ऐसा करते दैवसिक... उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे । १०

पडिक्कमामि भंते ! तीजा गुणव्रत अनर्थदंडव्रतकेविषै—

कदंर्प (हसी ठठोली) किया होवे, कुक्कुच्चिद (अश्लीलभाषण) किया होवे, वृथा प्रलाप किया होवे, बिना प्रयोजन कार्य-व्यापार किया होवे, भोगोपभोग की अनावश्यक सामग्री बढ़ाई होवे, ऐसा करते दैवसिक० उसका मिच्छा मे दुक्कड होवे ॥११

पडिक्कमामि भंते ! पहला शिक्षाव्रत सामायिक व्रत के विषै

मनसे दुष्ट चिन्तन किया होवे, वचन स दुष्ट भाषण किया होवे, कायसे दुष्ट व्यापार किया होवे, सामायिक मे आदर नहीं राखा होवे, पाठ अथवा समय की स्मृति ठीक नहीं राखी होवे । ऐसा करते दैवसिक० ... उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१२॥

पडिक्कमामि भंते ! दूजा शिक्षाव्रत प्रोषधव्रत के विषै

बिना देखे शोधे ही शरीर के मल को क्षेपण किया होवे, बिना देखे-शोधे ही उपकरणों को ग्रहण किया होवे, बिना देखे शोधे ही आस्तरण (चटाई) आदि बिछाया होवे, आवश्यककर्मों में आदर नहीं किया होवे, पाठ और विधिकी स्मृति ठीक नहीं राखी होवे। ऐसा करते दैवसिक० ... उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१३॥

पडिक्कमामि भंते ! तीजा शिक्षाव्रत भोगोपभोग परिमाणव्रत के विषै

सचित्त आहार किया होवे, सचित्त सम्बधाहार किया होवे, सचित्त सम्मिश्र आहार किया होवे, अभिषव (वृष्यद्रव) आहार किया होवे, ऐसा करते दैवसिक० ... उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१४॥

पडिक्कमामि भंते ! चौथा शिक्षाव्रत अतिथि संविभागव्रत के विषै

अचित्त मे सचित्तको मिलाया होवे, सचित्तमे ढांका होवे, पर व्यपदेश (दानकेलिये परवस्तु को अपनी बतलाना न देने के लिए अपनी को परवस्तु बतलाना) किया होवे, मात्सर्यभाव किया होवे कालका अतिक्रमण कियाहोवे। ऐसाकरते दैवसिक० उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१५॥

पडिक्कमामि भंते ! सल्लेखना का नियम विषै

जीवितकी वांछा कीनी होवे, मरणकी वांछा कीनी होवे, मित्रों मे अनुराग राखा होवे, सुखानुबंध (पूर्वसुखो का बारबार स्मरण) किया होवे, निदान किया होवे। ऐसा करते दैवसिक॰ ' उसका 'मिच्छा मे दुक्कड' होवे ॥१६॥

रागभाव से या द्वेषभाव से या प्रमाद के वशीभूत होने से जो मेरे से अकृत (पाप) हुआ हो या जो कुछ मेरे से कहा गया हो तो मै उस सबको क्षमा कराता हूँ ॥१॥

मै सब जीवो को क्षमा करता हूं। सारे जीव मुझ अपराधी को क्षमा करें। सारे प्राणियो मे मेरे मित्रभाव है, किसी के साथ वेर नहीं है ॥२॥

इति हिन्दी प्रतिक्रमण-पाटी ॥

सूचना

हिन्दी प्रतिक्रमण पाटी के बारे में—

पाठको की सुविधा के लिये प्राकृत पाटी के अर्थ तरीके हिंदी पाटी लिखी गई है यह पाटीकी पाटी है। और कोष्ठक ( ) चिन्ह मे अर्थ भी स्पष्ट किया गया है। सो कोष्ठकका अर्थवाला अश पाटी बोलते समय नहीं बोलना। तथा हिंदीकी प्रत्येक पाटी के अत भागमे 'ऐसा करते दैवसिक॰' ' उसका मिच्छा मे दुक्कड' ये अपूर्ण वाक्य दिये गये है उसको पडिक्कमामि भते सम्यग्दर्शन के विषै—इस पाटीके नीचे भागमे मोटेअक्षरो में दिये गये पाठ के अनुसार पढकर पूरा बोलना चाहिये

णिसिहीभक्तिआलोचना दंडक पाठ—

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणणिसिहियभत्ति—काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं ।

[णमो चउवीसएहं तित्थयराणं उसहा ऽऽइमहावीर-पज्जवसाणाणं,] इणं [एव] णिग्गंथं पावयणं [-सच्चं] अणुत्तरं केवलियं णेयाइयं सामाइयं [-पडिपुण्णं] संसुद्धं सल्लकट्टणं १, सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं १ मुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाण मग्गं अवितहं अविसंधि२, पवयणं उत्तमं ॥

तं सद्दहामि, तं पत्तीयामि ३, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदो उत्तरं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करंति, परिवियाणंति ।

समणोऽस्मि, संजदोऽस्मि, उवरदोऽस्मि, उवसंतोऽस्मि उवधि-णियडि-माण-माया-मोस मिच्छाणाण मिच्छादंसण-

---

[ ] इस चिन्ह का मध्यवर्ती पाठ प्रतियो मे नहीं मिलता ।

१ सल्लघट्टाण पाठ' । २ अविसति 'पाठः ३ पत्तियामि' पाठः

मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोऽमि सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि । जो जिणवरहिं पण्णत्तो [-तस्स धम्मस्स आराहणाए अब्भुट्ठिओमि विराहणाए विरदोमि]

एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइयारो अणाचारो [-तस्स भंते पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं पंडियमरणं वीरियमरण दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगम्मणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं]

इति पडिक्कमणणिसिही-भक्तिः

बारहवदेसु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं

अरहंत-सिद्ध—आयरिय-उवज्झाय सव्वसाहु-सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समाराहियं मे हवदु मे हवदु मे हवदु ।

इति श्रावक प्रतिक्रमणे द्वितीयं कृतिकर्म

श्री वृषभदेवको आदि लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकरोंको नमस्कार हो ।

यह ही निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा है, जो सत्य है, गुणो में सर्वोत्कृष्ट है, केवलि प्रणीत है, अनेकान्तात्मक होने से न्याययुक्त

है, सामायिक-रत्नत्रय प्राप्तिका कारण है, परिपूर्ण है, सर्वप्रकार से शुद्ध है, शल्यो को काटने वाला है, आत्मसिद्धिका मार्ग है, ध्यानका कारण होने से क्षपक आदि श्रेणियो का मार्ग है, क्षमा का मार्ग है, अपरिग्रह मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है, त्याग का मार्ग है, परम स्वाधीन मार्ग है, भवसागरका निर्याण मार्ग है, आत्म सुखास्वादनरूप मार्ग है, सारे दु:खो का नाशक मार्ग है, सदाचार का निर्वाहमार्ग या निर्वाण मार्ग है, यथार्थ रूप और विपरीतता रहित तथा असदिग्ध मार्ग है, ऐसा यह उत्तम प्रवचन है।

मैं उस प्रवचनको श्रद्धान मे लाता हूँ प्रतीति मे लाता हूँ मन से रोचता हूँ और हृदय से स्वीकारता हूँ।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को छोड़कर दूसरा कोई उत्तम शास्त्र नहीं है, न पहले हुआ, न आगे होगा, इस निर्ग्रन्थ प्रवचन से ज्ञान के द्वारा दर्शन के द्वारा चारित्र के द्वारा सूत्र के द्वारा सामायिक के द्वारा जीव कृतकृत्य होते है, ज्ञान को पाते हैं स्वाधीन होकर ससार से छूटते—स्वात्मानुभव सुख को पाते हैं सारे दु:खो का अन्त करते हैं, सर्वज्ञता को पाते है।

मै श्रमण हूँ, संयत हूं, उपरत (विरक्त) हू, उपशात हूँ, उपधि (परिग्रह) निकृति (शठता) मान माया मृषावाद-मिथ्या ज्ञान मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र को हेयरूप समझकर त्यागता हूँ सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को ग्राह्य समझकर रोचता हूँ।

जो श्री जिनेन्द्र ने कहा उस धर्म की आज्ञा के पालने में उद्यमी हूं विराधना मे दूर रहता हूँ।

इन सब में जो कोई मेरे दिन सम्बन्धी (रात्रि सम्बन्धी) अतिचार अनाचार हुए हो तो उसको हे भते ! हे गुरुदेव ! मैं पडिकमाता हूँ कि सोधता हूँ।

भावपूर्वक प्रतिक्रमण की है उसके प्रसाद से मेरे दु खक्षय कर्मक्षय रत्नत्रय लाभ सुगति मे गमन सम्यग्दर्शन समाधिपूर्वक मरण, सम्यक्त्वपूर्वक मरण, पडितमरण, वीर्यमरण और जिनेन्द्र के गुणो की सम्प्राप्ति हो।

बारह व्रतोमे प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहंत सिद्ध-आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पाच परमेष्ठियो की साक्षी से मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे।

इसप्रकार श्रावक प्रतिक्रमण में द्वितीय कृतिकर्म हुवा ॥२॥

अथ वीरचारित्रभक्तिनाम तृतीयं कृतिकर्म

क्रिया—बैठकर शुक्ति मुद्रा से कृत्यविज्ञापना पाठ पढना फिर भूमि स्पर्शनात्मक नमस्कार फिर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ५ पाठो को (पृ ६ स १३ पर देखो) पढना।

'विशेष'

कायोत्सर्ग मे सर्वत्र ९ जाप दिया जाता है परतु यहां दैवसिक प्रतिक्रमण मे ३६ बार (१०८ उच्छ्वासोका) और रात्रिक प्रतिक्रमण मे १८ बार (५४उच्छ्वासोका) 'णमोकार मंत्र' का जापदेना

कृत्य विज्ञापना पाठ—

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार-विसोहि-णिमित्तं पुव्वायरियकमेण णिट्ठिदकरण-वीर-चारित्तभत्ति-काउस्सग्गं करेमि

वीरचारित्रभक्ति पाठ (संयुक्त)

क्रिया—खड़े होकर पढ़ना

वीरो जर-मरण-रिऊ वीरो विण्णाण-णाण-संपण्णो ।
लोयस्सुज्जोययरो जिणवरचंदो दिसउ बोहिं १

श्रीवीरप्रभु जरा और मरण के नाशक हैं वे विज्ञान और ज्ञान मे संपन्न हैं, वे लोक (भावलोक) का उद्योत करने वाले हैं, वे जिनचन्द्र बोधि-रत्नत्रय को प्रदान करे ।।१।।

य सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान्सदा सर्वथा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः १
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्र-महितो वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ।

वीरात् तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयो हे वीर ! भद्रं दिश ३

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं
ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके
संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ४

१—जो सारे चराचर द्रव्यों को और उनके सहभावी गुणो को और क्रमभावी पर्यायोको भूत भविष्य वर्तमानकाल सबधी होचुके-होनेवाले-होरहे—सबको सदा और सर्वप्रकार से एक साथ प्रतिक्षण मे जानता है वह 'सर्वज्ञ' कहलाता है। उन सर्वज्ञ भगवान महावीर जिनेश्वर को नमस्कार हो।

२—श्री वीरप्रभु, जो सारे इन्द्र धरणेन्द्रोसे पूजे जा चुके है ज्ञानीजन जिनको आश्रित हुए है जो आत्मासे कर्मो को नष्ट कर चुके उन प्रभु को नमस्कार है, जिन से यह अनुपम धर्मतीर्थ प्रवृत्त हुआ है जिनकी तपस्या घोर है जिनमे श्री धृति कीर्ति कान्ति रूप दैवी शक्तिया समष्टिरूप से विद्यमान है, ऐसे हे वीर ! भद्र देवे पापनाश करे।

३—जो भव्य जीव ध्यानमे एकचित्त होकर संयमयोग युक्त हुए वीर के चरणो को नमते है, वे निश्चय ही शोक रहित होते और विषम ससार दुर्ग को तैरते हैं।

चारित्रभक्तिपाठ—

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय १

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्द्धितः शीलशाखः ।
समिति कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालः
गुण-कुसुम-सुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः २

शिवसुखफलदायी यो दयाच्छाययोद्धः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरित-रविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ३

१—सभी तीर्थकरों ने चारित्र को पालन किया और सारे शिष्यो के लिये उपदेश दिया, वह चारित्र पाच भेदरूप हैं, मैं उसे नमन करता हूं।

२—वह चारित्र-वृक्ष हमारे संसारके विभवरूप रागद्वेष के नाशका कारण होवे, जिनके जडे व्रतरूप है, काड (गोहला) संयमरूप है, जो यमनियम के जलसे बढ़ाया गया है, शाखा-शीलरूप हैं, कलिया पाच समिति रूप है कोपले तीनगुप्ति रूप हैं, फूलोंकी सुगन्धि विविधगुण रूप हैं, पत्ते बारह तपरूप हैं।

३—जो मोक्षफल दाता है, दया की छाया से सघन है, भव्यजीव रूपी पथिको का खेद मिटाने समर्थ है, और पापरूपी सूरज के ताप को मिटाने वाला है।

धर्ममाहात्म्यम्—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो १

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय २ ।।इति।।

१ धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है वह अहिंसात्मक संयमस्वरूप और तपोमयी है । जिसका चित्त सदा धर्ममे है उसे देव भी नमते पूजते है ।

२ धर्म सारे सुखो की खानि है, हितकारी हैं, ज्ञानी धर्म को प्राप्तकरते हैं धर्म से शिवसुख पाया जाता है. उस धर्म को नमस्कार हो, धर्मको छोडकर ससारी जीवो का दूसरा कोई मित्र नही हैं, उसका मूल दया है, मै धर्म मे चित्त लगाता हूँ, हे धर्म ! मुझे पालनकर ।

वीरचारित्रभक्ति आलोचनादंडक

क्रिया—बैठकर पढना

इच्छामि भंते ! वीरचारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। जो मए देवसिओ [-राइओ, पक्खिओ, चाउम्मा-

सिओ संवच्छरिओ] अइचारो अणाचारो आभोगो अणा-भोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चरिओ दुब्भासिओ दुचिन्तिओ णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइये बारसण्हं वदाणं विराहणाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे भंते! हे गुरुदेव! मैंने वीरचारित्रभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूं। जो मैंने दिन सम्बन्धी (रात्रिसम्बन्धी) अतिचार अनाचार आभोग अना-भोग किया हो, जो ज्ञानमें दर्शनमे चारित्रमे सूत्रमें सामायिकमें और बारहव्रतों की विराधना के विषयमे कायसे बुरा किया, वाणीसे बुरा बोला, मनसे बुरा विचारा हो तो उसका मेरे पाप मिथ्या होवे।

इति वीरचारित्रभक्तिः

बारहवदेसु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्वसाहु-सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समाराहियं मे हवदु मे हवदु मे हवदु।

इति श्रावकप्रतिक्रमणे तृतीयं कृतिकर्म

बारह व्रतोमे प्रमाद आदि से किये गये अतिचार (दोष) को सोधने निमित्त मेरे छेदोपस्थापन होवे।

अरहंत सिद्ध-आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांच परमेष्ठियों की साक्षी से मेरे सम्यग्दर्शन पूर्वक उत्तमव्रत दृढव्रत भले प्रकार आराधित होवे ।

इसप्रकार श्रावक प्रतिक्रमण मे तृतीय कृतिकर्म हुवा ॥३॥

शांतिचतुर्विंशतितीर्थङ्करभक्तिनामचतुर्थ कृतिकर्म

शान्ति भक्ति संग्रहः

कृत्य विज्ञापना-पाठ

क्रिया—बैठकर पढना

अथ देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण सिरिशांतिचउवीसतित्थयरभक्ति—काउस्सग्गं करेमि ।

क्रिया—भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना खडेहोकर सामायिक पाठ के अन्तर्गत १ से ७ पाठो को (पृष्ठ ६ से १३ तक देखो) पढना—फिर भक्ति पाठ पढना ।

अथ शान्त्यष्टकम्

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजाः
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसार-घोरार्णवः ।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपाद-सलिलच्छायानुरागं रविः । १

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशान्तिं यथा ।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां नृणां
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यंत्यहो विस्मयः २

संतप्तोत्तमकाञ्चनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धि-गौरद्युते !
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्पीडाः प्रयान्ति क्षयम् ।
उद्यद्भास्कर-विस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ३

त्रैलोक्येश्वरभङ्गलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान्
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानलान्
न स्याच्चेत् तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगा वारणम् ४

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते ! विभो !
नानारत्नपिनद्धदण्डरुचिरश्वेतातपत्र-त्रय !
त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः
दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुंजराः ५

दिव्यस्त्री-नयनाभिराम ! विपुलश्रीमेरुचूडामणे !
भास्वद् बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामण्डल !
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं
सौख्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ६

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयंस्–
तावद् धारयतीह पङ्कजवनं निद्राऽतिभारश्रमम् ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदयस्–
तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ७
शान्ति शान्तिजिनेन्द्र ! शान्तमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो दृष्टिं प्रसन्नां कुरु
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ८

इति शान्त्यष्टकम् ।

शान्त्यष्टक का हिन्दी रूपान्तर

प्रेमभक्तिमे लीन न होते जो जन तेरे चरण शरण,
क्योंकि उन्हे है शेष भोगना भवसागरदुख जन्म-मरण ।
जब अति उग्र ग्रीष्मऋतुका रवि जगती-तल पर तपता है,
छाया चन्द्र किरण शीतलजल तब सबके मन लगता है ॥१॥
विद्या औषध मत्र हवन औ जलसिंचन द्वारा जैसे,
होता है उपशान्त शीघ्र ही चड सर्प का विष, तैसे—
प्रभो ! आपके पद पकज का जो नर ध्यान स्तवन करते,
विस्मय ! वे अपना तनघातक विघ्नजाल सहसा हरते ॥२॥
तप्त सुवर्णकान्ति-तन ! हे जिन ! जो जन नतमस्तक होते
तुम्हरे पदमे भक्तिभाव से वे अपनी पीड़ा खोते ।
ऐसे, जैसे अखिल विश्वकी दृष्टि हरी निशि अंधियारी,
उगते रवि के किरण तेज से तुरत विलय होती सारी ॥३॥

इन्द्र अहोन्द्र चक्रपति का भी जिस पर कुछ वश चला नहीं
जन्म-जन्म मे जीव भ्रमाये काल दावानल उग्र कही।
जो तुव पदपंकज की स्तुति गंगा-वारण यह नहि पाता
तो क्योंकर कोइ भवि-प्राणी उससे बचकर शिवपुर जाता॥४॥

रत्नजडित अतिरुचिर दंडयुत तीन छत्र शिर पर सोहै,
लोकअलोक विश्व के ज्ञायक ! प्रभो आप सम और को है ?
जो तुझ पदका ध्यान करै, नित रोग समूह मिटै उनके
क्रूर बली जब सिंह गरजता भगते ज्यों कुञ्जर बनके ॥५॥

मेरु शिखर पर देव-देवियों के नयनोत्सवके कर्ता !
विश्वइष्ट भामंडलसे प्रभु ! उदित सूर्य-द्युति के हर्ता !
तेरे पदपकज युग की स्तुति करकेही भवि जीव यहै,
अनुपम शाश्वत निराबाधसुख सार अचिंत्य अनन्त लहै ॥६॥

प्रभा पुञ्ज सूरज की लाली नभ में छिटक नहीं पाती,
तब तक ही पकज की कलियां बिकसित नहीं होने पाती।
जब तक तेरे चरणयुगल का भगवन् ! ध्यान नहीं धरते
तब तक प्रायः सभी जीव ये भारी पाप वहन करते ॥७॥

तुव पद पकज के आश्रय से विषयभाव तजि शांत हुए,
शान्ति जिनेश ! शांतिइच्छुक जन घने शांति को प्राप्त हुए।
चरण शरण मे लीन भक्ति से 'शान्त्यष्टक' पढने वाले-
मुझ सेवक की प्रभो ! कृपाकर निर्मल दृष्टि बना डाले ॥८॥

—अनुवादक दीपचन्द पांड्या

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शांतिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशांतिम् ॥१

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् २
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्र
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ३
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्रांजलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतांतचक्रम्४
स्वदोषशान्त्या विहितात्मशांतिः शांतेर्विधाता शरणं गतानाम्
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शांतिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ५

—स्वयम्भूस्तोत्रे श्रीस्वामि-समन्तभद्रः ।

'नित्यनियमपूजा' का शान्तिपाठ भी पढा जा सकता है आदि २

इति शान्तिभक्तिसंग्रहः

चतुर्विंशतितीर्थङ्करभक्तिसंग्रहः—

चउवीसं तित्थयरे उसहाईवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वे समण-गणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि १

१—श्री वृषभदेव आदि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकरो, सारे श्रमणो को गणधरों-आचार्यों को और सिद्धो को मैं मस्तक नमाकर नमस्कार करता हूं ।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तं गताः
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः ।

ये साभ्विन्द्र--सुरा-ऽप्सरो गण--शतैर्गीत--प्रणुताऽ र्चितास्
तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥१॥
नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥२॥
विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोषं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सैंहसेन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्म केतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥३॥
कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषुचक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीन्द्रं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या ॥४॥

अर्थ—१ जो लोक मे एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं, लोक अलोक रूप ज्ञेय समुद्र के पारगामी हैं, जो भव जाल—संसार बन्धनो के कारण भूत रागद्वेष और मोह को अच्छी तरह से मथन कर चुके है चांद और सूरज से भी अधिक तेजस्वी हैं जो इन्द्र देवगण और देवांगनाओ के समूहो द्वारा भले प्रकार गीत,

प्रणूत और अर्चित हुए—कीर्तित वन्दित और महित हुए है उन श्री वृषभदेव से आदि लेकर वीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

२—देवों से पूज्य श्री ऋषभजिनेन्द्र को, सर्व लोक को दिपाने में दीपक रूप अजित जिनेश्वर को, सर्वज्ञ श्री शंभव को, मुनिगणों मे श्रेष्ठ देवदेव श्री अभिनन्दन को, कर्म शत्रुओं के नाशक सुमतिनाथ को, पद्मपुष्प के समान गंधवाले श्री पद्म-प्रभ को, क्षमाशील जितेंद्रिय श्री सुपार्श्व को, और पूर्णचन्द्र तुल्य श्री चन्द्रप्रभ को मै स्तुति करता हूँ।

३—विश्व विख्यात श्री पुष्पदन्त को, भवभय के नाशक त्रिलोकीपति श्री शीतल को, अठारह हजार शीलो के धारक श्री श्रेयोनाथ को, श्रेष्ठ पुरुषो के भी गुरु श्री वासुपूज्य को, मुक्ति पद को प्राप्त—तथा इन्द्रिय अश्वो को दमन कर चुके ऐसे श्री विमल ऋषिपति को, मुनीन्द्र श्री सिंहसेन के पुत्र अनन्तनाथ को समीचीन धर्म के ध्वज रूप श्री धर्म को, शम दम के धारक शरण रूप श्री शान्तिनाथ को स्तुति करता हूं।

४—सिद्ध स्थान मे विराजे श्री कुन्थु को, भोग बाण और चक्र के त्यागी श्रमणपति श्री अरनाथ को, विख्यात वंशी श्री मल्लिनाथ को, देवविद्याधरो से पूजित सौख्य राशि रूप श्री सुव्रत-नाथ को, देवेन्द्र पूज्य श्री नमिनाथ को, हरिवंश मे तिलक रूप व संसार का नाश कर चुके ऐसे श्री नेमिचन्द्र को, नागेन्द्र से वन्द्य श्री पार्श्वनाथ को, और श्री वर्धमान स्वामी को शरण रूप मान कर मैं भक्ति से प्राप्त होता हूँ।

॥ इति ॥

वत्ताणुट्ठाणें—आदि अपभ्रंश भाषा का प्रसिद्ध पाठ तथा चतुर्विंशति तीर्थङ्करों के स्तुति परक विभिन्नभाषात्मक दूसरे भी पाठ पढे जा सकते हैं।

शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकीआलोचना

इच्छामि भंते ! संति चउवीसतित्थयर-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीस—अतिसय—विसेस—संजुत्ताणं बत्तीस देविंद मणि-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ अणगारोवगूढाणं थुइ सय सहस्सणिलयाणं उसहा-ऽऽइ-वीर--पच्छिम-मंगल-महा पुरिसाणं भत्तीए णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ॥

अर्थ—हे भंते ! हे गुरुदेव ! मैंने शान्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूं जो पंच महाकल्याणकों को प्राप्त हुए हैं अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त हैं चौतीस अतिशयों से विशेष संयुक्त हैं बत्तीस देवेन्द्रों के रत्न जटित मुकुट शोभित मस्तकों से पूजित हैं बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि मुनियति और अनगार इन चार

प्रकार के साधु वृन्दों से सेवित हैं लाखों स्तुति के स्थान रूप हैं ऐसे वृषभ आदि वीर पर्यन्त चौबीस मंगल रूप महा पुरुषों को मैं भक्ति से सदा अर्चता पूजता वन्दता और नमता हूँ।

(भाव पूर्वक की गई इस भक्ति के प्रसाद से) मेरे दुःखों का क्षय होवे कर्मों का क्षय होवे रत्नत्रय का लाभ होवे सुगति में गमन होवे सम्यग्दर्शन होवे समाधिपूर्वक मरण होवे और जिनेन्द्र के गुणों की सम्प्राप्ति होवे।

प्रतिक्रमण-आलोचना-दण्डक पाठ

इच्छामि भंते पडिक्कमणाइचारं आलोचेउं तत्थ देसासिआ आसणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिया काउस्सग्गासिआ पणामासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए छसु आवासएसु परिहीणदा जा मए अच्चासणा मणसा वचसा कायेण कदा वा कारिदा वा कीरंतो वा समणुमणिणदो। तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अर्थ—हे भंते। हे गुरुदेव। मैं प्रतिक्रमण संबधी अतिचार दोषों का आलोचन करना चाहता हूं उसमें देशाश्रित आसनाश्रित स्थानाश्रित कालाश्रित मुद्राश्रित कायोत्सर्गाश्रित प्रणामाश्रित आवर्ताश्रित प्रतिक्रमण क्रिया में छह आवश्यकों के विषय में हुई हीनता (कमी) के द्वारा जो मैंने आसादना (आगम से विरुद्धता) मन से या वचन से या काय से कीनी होवे कराई होवे करते को भला माना होवे। उसका दुष्कृत मेरे मिथ्या होवे।

इति श्रावक प्रतिक्रमणे चतुर्थं कृतिकर्म ॥४॥

प्रतिक्रमण संबंधी समाधिभक्ति-कृत्यविज्ञापना

क्रिया—समाधि भक्ति की कृत्यविज्ञापना बोल कर

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए आलोयण सिरि सिद्धभत्ति—पडिक्कमणणिसिहीभत्ति---णिट्ठिदकरण वीर-चारित्तभत्ति सिरिसंतिचउवीसतित्थयरभत्ती काऊण तत्थ हीणाहियत्ताइदोसविसोहणट्ठं समाहिभत्ति काउस्सग्गं करेमि।

अथ दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण मे १ आलोचन श्री सिद्ध-भक्ति २ प्रतिक्रमण निषधाभक्ति ३ निष्ठितकरण वीर चारित्रभक्ति और ४ श्री शांतिचतुर्विंशति तीर्थंङ्कर भक्ति को करके उसके हीनत्व अधिकत्व आदि दोषो की विशुद्धि के लिए समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

क्रिया—खड़े २ नमोकार मत्र का ६ बार जाप देना।

समाधि भक्ति पाठ

पृष्ठ ५० से ५५ तक मुद्रित ५ पाठो मे से सब या कोई एक पाठ पढना और आलोचना पढ कर ऐसे तीन बार अत मे

आसही। आसही!! आसही!!!

बोल कर प्रतिक्रमण क्रिया समाप्त करना।

इति प्रतिक्रमण नाम चतुर्थं आवश्यकं कर्म

अथ प्रत्याख्यान नाम पंचमं आवश्यकं कर्म

'ओं नमः सिद्धेभ्यः। अहं अमुकं परिग्रहं अथवा अमुकं आहारं अमुककालपर्यन्तं प्रत्याख्यामि':—

'ऐसा पढ़कर प्रत्याख्यान धारण करे।

और मेरे अमुक परिग्रह का या अमुक जाति के आहार का त्याग इतने समय के लिए है-ऐसा संकल्प करें'

कृत्य विज्ञापना

'अथ प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'—

ऐसा पढ़कर

९ बार नमोकार मंत्रका जाप देकर पृष्ठ ६२-६३ पर लिखी लघुसिद्धभक्ति और सिद्धभक्ति आलोचना को पढ़ें

इसी प्रकार जब पूर्व प्रत्याख्यान को छोडे तो—

कृत्य विज्ञापना

'अथ प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-'

ऐसा पढ़कर ९ बार नमोकार मंत्र का जाप कर वही लघु सिद्ध भक्ति और सिद्धभक्ति की आलोचना पढ़ें।

इति प्रत्याख्यान नाम पंचमं आवश्यकं कर्म

कायोत्सर्ग नाम षष्ठं आवश्यक कर्म

क्रिया—खड़े खड़े और शक्ति न होतो बैठे बैठे पढ़ना।

काउस्सग्गं मोक्ख पहदेसयं घाइ कम्म-अदिचारं
इच्छामि अहिट्ठादुं जिणसेविददेसिदत्तादो ॥१॥
एगपदमस्सिदस्स वि जो अदिचारो दु रागदोसेहिं
गुत्तीहिं वदिकमो वा चदुहिं कसाएहिं व वदेहिं ॥२॥
छजीवणिकाएहिं व भय-मय ठाणेहिं बंभ-धम्मेहिं
काउस्सग्गं ठामि य तं कम्मणिघादणट्ठाए ॥३॥

अर्थ—कायोत्सर्ग मोक्षमार्ग का उपदेशक है सावद्ययोगों के दोषों को मिटाने वाला है ऐसे कायोत्सर्ग को जिसे श्री जिनेंद्र-देव ने आत्महितार्थ धारण किया और विश्व के लिये उपदेश दिया है मै स्वीकार करना चाहता हूँ। आगम के एक पद का भी आश्रय करके जो दोष लगा हो। राग और द्वेष से अतिचार लगे हो तीन गुप्ति मे उल्लन्घन हुवा हो चारो कषायो से विपरीत आचरण हुआ हो पाचव्रतो की पालना नहीं की हो छह जीव निकाय की विराधना की हो सातभयों और आठ मद स्थानो से नव प्रकार ब्रह्मचय मे और दशधर्मो मे अपनी विरुद्ध परिणति हुई हो और उससे कर्मबंध हुवा हो तो उन कर्मों के नाश करने के लिए मैं कायोत्सर्ग मे स्थित होता हूं-

इसके बाद—आगारसूत्र (पृष्ठ १० पर देखो) पढकर णमोकार मंत्र का उच्छ्वास विधि से ६ बार या १०८ बार जप देना चाहिये या इससे भी अधिक बार चिंतन करना चाहिए।

इति कायोत्सर्ग नाम षष्ठं आवश्यकं कर्म।

आसही ! आसही !! आसही !!!

इति सामायिक पाठादि संग्रह।

णमोणिसीहीए—दंडक पूर्ति पाठ

पृष्ठ ६८ ६६ पर मुद्रित पाठ में जो क्रम देकर कोष्ठक दिये हैं उनमें यथाक्रम इस पूर्तिपाठके अंश जोड देने पर पूरा णमो णिसीहीए पाठ बन जाता है।

१ चरित्तं चरित्ता य। २ णियमो णियमिदा य, ३ णिएहवो णिएहुदा य सच्चं च सच्चवादी य दत्तं च दत्तवादी य (१) ४ जाणि काणि०।

५ पंचसु मंदरपव्वदेसु उदयवर कुंडलधर माणुसुत्तरे सेले णंदीसरे दीवे णिस्सढे णीलवंत वेयड्ढे चुल्लए हिमवदे महाहिमवदे हेरएणवदे हरिवंसे रम्मयवंसे भूदम्मि य रुप्पिम्मि य णायरम्मि य सिहरिम्मि य तहेव वक्खार–पव्वदे चोरान्ते तुंगीए सब्भियप्पे दहिमुहे अजणे दयावद पव्वदे विज्जुप्पहे मालवंते सेले णंदणवणे सुमणसे भद्द-सालवणे गंधमादणे पंडुवे रम्मे।

६ कुंडले मिंढे रम्मे ७ सेत्तुंजे छिएणसेले इसिगिरि–विउलगिरि हत्थिदंते सज्झे विज्झे रेहावंते पुप्फभद्दे ८ उसहसेले भयवदे दंडप्पए देवदुंदुहीणिएणाए छट्ठे ट्ठाणे सालयडे सुप्पदिट्ठे पोदणपुरे रम्मे। ६ णिब्भयाणं महदरयाणं आरयाणं वीरयाणं १०,विरयाणं ११ णिप्पंकाणं णिब्भवाणं तिगुत्ताणं पएणसमणाणं १२ साहूणं तवस्सीणं वादीणं १३ पुक्खरवरदीवड्ढे धादईखंडे जम्बूदीवे। इति

ग्यारह प्रतिमा की प्रतिक्रमण पाटी

पृष्ठ ७७ से आगे का पूर्ति पाठ

पडिक्कमामि भंते सामाइयपडिमाए मणदुप्पणिधाणेण वा वायदुप्पणिधाणेण वा कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदिअणुवट्ठावणेण वा

* जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा वचसा काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं *। ३

पडिक्कमामि भंते पोसहपडिमाए अप्पडिवेक्खिय-अप्पमज्जिय-उस्सग्गेण वा अप्पडिवेक्खिय-अप्पमज्जिय-आदाणेण वा अप्पडिवेक्खिय-अप्पमज्जिय-संथारोवक्कमणेण वा आवासयाणादरेण वा सदि अणुवट्ठावणेण वा जो मए देवसिओ० · · · मिच्छा मे दुक्कडं । ४

पडिक्कमामि भंते सचित्तविरदिपडिमाए पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा तेउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाइया जीवा अणंता-णंता हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं । ५

पडिकमामि भंते राइभत्तपडिमाए णवविह-बंभचेरस्स दिवा जो मए देवसिओ० ·· · मिच्छा मे दुक्कडं। ६

पडिकमामि भंत बंभपडिमाए इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थिमणोहरंगणिरिक्खणेण वा पुव्वरयाणुस्सरणेण वा कामकोवणरसासेवणेण वा सरीरमंडणेण वा जो मए देवसिओ · ···तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। ७

पडिकमामि भंते आरंभविरदिपडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसिओ आरंभो मणसा ···· तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। ८

पडिकमामि भंते परिग्गहणिरदिपडिमाए वत्थमेत्त. परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ अइचारो··· · तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। ९

पडिकमामि भंते अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा कारिदं वा कीरंतो वा समणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। १०

पडिकमामि भंते उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुल अहोरदियं आहारियं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतो वा समणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

॥ इति ॥

विचार विमर्श

प्राचीन पाठों की भाषा का प्रश्न

हमारे प्राचीन पाठ प्राकृत भाषा के है, वे सब की समझ मे नहीं आते। बहुत से भाइयों का एतराज है कि बिना समझे पढना न पढने के बराबर है। पर उन्हे समझना चाहिए कि अलग २ देशवासी हम यदि अपनी २ भाषा मे अनुवादित करके पाठो को बोलने लगे तो हमारी सांस्कृतिक एकता ही समाप्त हो जायगी। बौद्ध मन्त्र, वेद मन्त्र, नमाज, बाइबिल अपने प्रकृत रूप में ही बोले जाते रहे हैं सो हमे भी प्राचीन पाठ उसी रूप मे पढना चाहिए। केवल अनुवाद कर देने मात्र से शास्त्र का रहस्य समझ में नहीं आया करता इसके लिए स्थिर चित्त और निरन्तर अभ्यास अपेक्षित है।

सामायिकमें नव कोटी या छह कोटी प्रत्याख्यान

कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करणोसे मन वचन काय इन तीन योगो को गुणने से नव कोटी होता है नव कोटी त्याग मुनियों केसभव है और गृहस्थ के अनुमोदना बिना छह कोटी प्रत्याख्यान ही सभव है क्योंकि उसके घर और परिग्रह का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है अत पृष्ठ ६ पर सामायिक की प्रतिज्ञा में छह कोटी का पाठ ही इष्ट है इस पर विद्वानो को अपना मत स्पष्ट करना चाहिए नव कोटी प्रत्याख्यान इष्ट होतो--पृष्ठ ६ पर **'जावंणियमं तिविहं तिविहेण मणसा वचसा कायेण णकरेमि ण कारेमि अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि'** ऐसा बोलें॥

जिनवाणी श्रवण महिमा पद्य

जिनवाणी के सुने से मिथ्यात्व मिटै।
मिथ्यात्व मिटै समकित प्रकटै जिनवाणी के० ।टेक।
विषय लगैं विष सम अतिखारे परसे ममता बंध छुटै
अंतर तिमिर विलीन होत उर ज्ञान ज्योति निश्चय प्रकटै ।१।
भाव कुभाव बसैं नहिं मन में कुगति पड़त प्राणी सुलटै
संतजनों की सेवा बसै मन मोहभाव से मति पलटै ।२।
नरभव का क्षण परम अमोलक सो कुकथा करते न कटै
समता परिणति जगै निरन्तर दुखद कर्म के बंध हटै ।२।
श्रुतिपुट से जे शांतिसुधामय जिनवाणीरस सरस गटैं
"दीपचंद" उन भव्यजनों का निश्चय ही भवताप मिटै ।४।

जिनवाणी श्रवण महिमा पद्य

जिनवाणी के सुने से मिथ्यात्व मिटै।
मिथ्यात्व मिटै समकित प्रकटै जिनवाणी के० ।टेक।
विषय लगैं विष सम अतिखारे परसे ममता बंध छुटै
अंतर तिमिर विलीन होत उर ज्ञान ज्योति निश्चय प्रकटै ।१।
भाव कुभाव बसैं नहिं मन में कुगति पड़त प्राणी सुलटै
संतजनों की सेवा बसै मन मोहभाव से मति पलटै ।२।
नरभव का क्षण परम अमोलक सो कुकथा करते न कटै
समता परिणति जगै निरन्तर दुखद कर्म के बंध हटै ।३।
श्रुतिपुट से जे शांतिसुधामय जिनवाणीरस सरस गटै
"दीपचंद" उन भव्यजनों का निश्चय ही भवताप मिटै ।४।

केकड़ी की दि० जैनसमाज द्वारा संचालित

—: धार्मिक संस्थाएं :—

१—श्री दि० जैन समन्तभद्र महाविद्यालय
धार्मिक व्यापारिक एवं संस्कृत विद्या का उत्तम शिक्षण केन्द्र।

२—अमृत सजीवन जैन औषधालय
विशुद्ध औषधोपचार द्वारा जनता की निःशुल्क उपकारिणी संस्था।

३—छात्रावास—देहाती छात्रों के लिये शिक्षण और भोजनका समुचित साधन।

४—दि० जैन सरस्वती भवन-मुद्रित अमुद्रित जैन ग्रन्थोंका महान् संग्रहालय।

५—श्री विमलमति जैन कन्या विद्यालय
जैनकन्याओं को धार्मिक और औद्योगिक शिक्षा दात्री संस्था

६—अनेकान्त प्रभाकर मण्डल—
साहित्य प्रकाशन, प्रचार और प्रभावना कार्यो का विशेष आस्थान।

७—श्री बाहुबलि व्यायामशाला, ८ दि० जैन संगीत मंडल और ९ वीरवाचनालय।

ये सब संस्थाए संस्था के निजी विशाल भवन मे दक्ष व्यवसायी संचालकों के तत्वावधान में सुदीर्घकाल से व्यवस्थित चालू है।

प्रत्येक धार्मिक बंधु का कर्तव्य है कि उपरोक्त संस्थाओं में शक्ति भर दान देकर अपने द्रव्य का सदुपयोग करे और पुण्य के भागी बने।

महामन्त्री—मिलापचन्द कटारिया

मुद्रक:-श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस, ब्यावर में मुद्रित।